॥ श्रीः ॥

श्रीमद्भागवतचतुर्थस्कंधान्तर्गतं

पुरंजनाख्यानम्.

श्रीमन्नारायणशास्त्रिविरचितया

पदार्थमुक्तावली

समाख्यया भाषाटीकया सनाथीकृतम्.

तदिदम्

श्रीकृष्णदासात्मज–गङ्गाविष्णुना

नैजे "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये

संमुद्य प्रकाशितम्.

कल्याण–मुंबई.

संवत् १९५२, शकाब्दाः १८१७.

॥ श्रीः ॥

अथ

श्रीमद्भागवतचतुर्थस्कन्धान्तर्गतं

पुरंजनाख्यानम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।

॥ मैत्रेय उवाच ॥

इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः ॥
पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि "अब पुरंजन उपाख्यान वर्णन करे हैं" ऐसे शिवजी कहिकरकै चुप्प भए तब प्रचेतानने पूजा कीनी तब राजपुत्रनके देखते २ तहांई हर अंतर्द्धान होते भए ॥ १ ॥

रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ॥
जपन्तस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥ २ ॥

रुद्रको गायो भगवतको स्तोत्र सब प्रचेता जपतेभए जलमें दश हजार वर्षतक तप करते भए (यह पहला कथाभाग समाप्त हुआ) ॥२॥

प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ॥
नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥

॥ अथ पुरंजनाख्यानम् ॥ हे विदुर! कर्ममें आसक्त मन ऐसे प्राचीनबर्हि राजाको कृपालु वेदांततत्वज्ञाता नारदजी ज्ञान देतेभए ॥३॥

श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणात्मन ईयसे ॥
दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥ ४ ॥

हे राजन्! कर्मकरके आत्माकी चेष्टा करवेके अर्थ कितनो कल्याण है दुःखहानी और सुखकी प्राप्तिके लिये यत्न करते हैं पर श्रेय वामेंभी नहीं है ॥ ४ ॥

॥ राजोवाच ॥

न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ॥
ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥ ५ ॥

राजा बोले कि हे महाभाग ! परमकर्ममें मेरी बुद्धि विद्ध रही है, सो मैं मंगल नहीं जानूंहूं निर्मल ज्ञान मोसें कहो जासे कर्मसे मुक्त होजाऊं ॥ ५ ॥

गृहेषु कूटमार्गेषु पुत्रदारधनार्थधीः ॥
न परं विन्दते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥ ६ ॥

छल छिद्रवाले धर्मयुक्त घरोंमें पुत्र दारा धन अर्थ बुद्धि है मूढ हूं सो संसारके मार्गमें घूंमूंहूं परमेश्वरकूं जानूं नही हूं ॥ ६ ॥

॥ नारद उवाच ॥

भो भोः प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे ॥
संज्ञापिताञ्जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी बोले कि हे राजन् ! हे प्रजापते ! तुह्मारे मारेभए हजारहीं जीव जो तुमने दयारहित होकर मारे हैं उन्हें देखो ॥ ७ ॥

एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव ॥
संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥

यह सब तुह्मारे दिये दुःखका स्मरण करते तुह्मारी वाट देखतेहैं सो जब तुह्मारा शरीर छुट जायगा तब यह लोकयंत्रके शृंगोंसे तुमको छेदन करेंगे ॥ ८ ॥

---

१ जीव तौ अपने कर्मानुसार जन्म ले लेते हैं फिर यज्ञके राजासे बदला लैनेको

अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् ॥
पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥ ९ ॥

इस विषयमें तुमसे पुरातन इतिहास कहितेहैं जो पुरंजनको चरित्र है तुम सुनो मैं कहूंहूं ॥ ९ ॥

आसीत्पुरंजनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः ॥
तस्याविज्ञातनामाऽऽसीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः १०॥

हे राजन्! बडो यशस्वी पुरंजन नाम राजा होतोभयो,ताको अविज्ञातनामक सखा भयो, जो सब चेष्टानकूं जानै ॥ १० ॥

सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ॥
नानुरूपं यदाऽविन्ददभूत्स विमना इव ॥ ११ ॥

"या अध्यायको व्याख्यान आगे अध्यायमें विस्तारसे कहेंगे, परंतु कोई कोई कठिनतर शब्दनको व्याख्यान जहां शब्द आवैगो वहांको वहभी करैंगे जैसे, स्वकर्मभिः पुरं शरीरं जनयतीति पुरंजनो जीवः न विज्ञानं चेष्टितं यस्य स ईश्वरस्तस्य सखा" अविज्ञातनामा पुरंजन जीवको नाम है "अविज्ञातावचेष्टितं नाम ईश्वरको है" सो प्रभु पुरंजन रहिवेको स्थान ढूंढते पृथिवीपर घूमते, अपने समान स्थान जब न देखा तब दुर्मनकी नाईं होते भए ॥ ११ ॥

न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ॥
कामान्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥ १२॥

पृथिवीमें जितने पुर हैं उनको अच्छे न मानतो भयो तिस २ विषयकी सिद्धिके निमित्त कामनानकी चाहना करतो भयो ॥ १२ ॥

पशुरूप कैसे रहे ? उत्तर यह है जीव तौ अपने कर्मानुसार योनियोंमें जातेही है जो प्राणी जिस जीवको मारताहै यमराजके दूत उस जीवका रूप धार उसै दुःख देते हैं ह जीव यह जान्ता है कि जिसै मैंने मारा यह वही है इस कारण वे जीव दीखे १

स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु ॥
दद‌र्श नवभिर्द्वार्भिः पुरीं लक्षितलक्षणाम् ॥ १३ ॥

एकसमय हिमाचलकी दहिनी भूमिके नीचे नौ दरवाजेयुक्त सुंदर सब लक्षण सम्पन्न पुरकूं देखतो भयो ॥ १३ ॥

प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः ॥
स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥ १४ ॥

प्राकार उपवन अटारे खाई इन्द्रियरूप तोरण, सुवर्ण चांदी लोहाके शृंग सब ओर बने गृहोंसे संकुल ॥ १४ ॥

नीलस्फटिकवैडूर्यमुक्तामरकतारुणैः ॥
तप्तहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥ १५ ॥

नील स्फटिक वैडूर्य मुक्ता मरकत अरुण रत्नोंसे रचीभई हर्म्यस्थलीसे प्रकाशित श्रीसे भागवतीकी समान शोभित ॥ १५ ॥

सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः ॥
चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥

सभा चौराए राजमार्ग ओरसे खेलवेके स्थान जनोंके विश्रामस्थान ध्वजा पताका, और मूंगाकी वेदीकरके युक्त ॥ १६ ॥

पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ॥
नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥ १७ ॥

पुरीके बाहिरके उपवन दिव्य वृक्षलतासे सघन सरोवरोंके भीतर पक्षी और भौंरोंके नादका कोलाहल था ॥ १७ ॥

हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना ॥
चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसंपदि ॥ १८ ॥

शीतल झरनानके कणसें लगीभई वायुसे चलायमान होनेसे वृक्षोंकी शाखा और पत्रोंको शोभा सरोवरियोंके तटपर पूर्ण हो रही थी॥१८॥

नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ॥
आहूतं मन्यते पान्थो यत्र कोकिलकूजितैः ॥ १९ ॥

अनेक वनके मृगसमूह मुनिव्रत धारके किसीको बाधा नहीं देतेथे जहां कोकिलानकी कूजितसे पांथोंको ये मालुम पडे है कि मानो हमै कोई वुलावे है ॥ १९ ॥

यदृच्छयाऽऽगतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् ॥
भृत्यैर्दशभिरायान्तीमेकैकशतनायकैः ॥ २० ॥

तहां अपनी इच्छासे एक उत्तम स्त्री दश चाकर सहित एक एक शतनायक लिये आती भई उसे पुरंजनने देखा ॥ २० ॥

पञ्चशीर्षाहिना गुप्तां प्रतिहारेण सर्वतः ॥
अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥ २१ ॥

पंचाशिरके सर्पसे रक्षित हो यह कामरूपधारिणी कशोर अवस्थामें पूर्ण पतिको ढूंढती थी ॥ २१ ॥

सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् ॥
समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम्॥२२॥

सुंदर नाक, सुंदर दांत, सुंदर कपोल, श्रेष्ठ मुख बराबरके दोनों कानोंमें कुंडलश्रीको धारे ॥ २२ ॥

पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् ॥
पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलतीं नूपुरैर्देवतामिव ॥ २३ ॥

पीरी फरिया पहिने सुंदर कटिपश्चाद्भागवारी श्याम सुवर्णकी कोंदनी धारे,शब्दायमान नूपुरों देवताकी नाईं मालूम पडती भई॥२३॥

स्तनौ व्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ ॥
वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीम् ॥ २४ ॥

तरुणाईको प्रगट करनेहारे वर्तुलाकार स्तनोंको लाजके मारे वस्त्रोंसे ढक रहीथी ॥ २४ ॥

तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ॥
स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भमद्भ्रुवा ॥ २५ ॥

लाज भरे मंद हास्यसे शोभित इस बालेके प्रेमसे ऊपरकी ओर स्फुरायमान भृकुटीरूप धनुष निर्गत हुए स्नेह भरे नैनोंके पंखवाले कटाक्षरूपी बाणोंसे विद्ध हो पुरंजन उससे बोला ॥ २५ ॥

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ॥
इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥ २६ ॥

हे कमलनैनी ! तुम कौन हो ? कौनकी हो ? हे सति ! कहांते आई हो ? यह उपपुरी कौनकी है ? कहा करवेकी इच्छा है ? सो कहो॥२६॥

क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभटाः ॥
एता वा ललनाः सुभ्रूः कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ॥२७॥

ये ग्यारह महाभट कौन हैं ? हे सुभ्रु ! ये ललना कौन है ? और ये तुह्मारे आगे चलवेवारो महासर्प कौन है ॥ २७ ॥

त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथवा रमापतिं ।
विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ॥
त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं ।
क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥ २८ ॥

तुम इस निर्जन वनमें अपने पति धर्मको ढूंढती लज्जा तो नहीं

१ कवित्त ॥ " जबसे द्वै पात भयो बिरुला फलफूल रह्यो अपनी रुचिसैं । कोऊ सुंदर नारिके हाथ परो तो कताय बुनाय धरो गजसैं ॥ नितही-तिनतांतकी आंच सही धो वियाकी पछार सही रुचिसौं । इत्तनो दुःख पाय भयो अंचरा तब कौन किलोल करै कुचसौं ॥ १ ॥ "

हो अथवा शिवको ढूंढती पार्वती वा ब्रह्माको ढूंढती सरस्वती अथवा भगवानको ढूंढती लक्ष्मी हो तुम मुनियोंकी भांति नियम धारे हो जो तुह्मारा पति होगा तुह्मारे चरणोंकी कामनासै उसके सब मनोरथ पूरे होंगे जो लक्ष्मी हो तौ तुम्हारे हाथका कमल कहां गिरगया ॥ २८ ॥

नाऽऽसां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्-
पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ॥
अर्हस्यलंकर्तुमदभ्रकर्मणा
लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥ २९ ॥

हे वरोरु ! परन्तु इनके मध्यमें भूमिकी छूयवेवारी तौ कोई नहीं है महा कर्मकारी मुझ वीरवरके साथ या पुरीमें तुम रमण करवेकों योग्य हो, जैसे यज्ञपुरुषके साथ श्रीलक्ष्मी रमण करै ॥ २९ ॥

यदेष तेऽपाङ्गविखण्डितेन्द्रियं ।
सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा ॥
त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः ।
प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥ ३० ॥

हे शोभने ! लाजभरी मुसकानकी भ्रूकटाक्षसे खंडित इंद्रियवारे मोको तो करके रचोभयो भगवान् मनोभव कामदेव बाधा करै है सो तुम कृपा करो ॥ ३० ॥

तदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं ।
व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ॥
उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं ।
यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥

हे शुचिस्मिते ! लाजसे सामने तू नहीं आती सो सुंदर भ्रूविशाल नेत्रयुक्त लंबे लंबे नीले अलकसमूहसे सुंदर वाणीवारे मुखकूं खोलके दिखाओ ॥ ३१ ॥

॥ श्रीनारद उवाच ॥

इत्थं पुरंजनं नारी याचमानमधीरवत् ॥
अभ्यनन्दत तं वीर हसन्ती वीरमोहिता ॥ ३२ ॥

श्रीनारदजी बोले कि ऐसे पुरंजन नारीको अधीरवत् याचनाकर रहेथे तब वो नारी उसे मोहित हो हसती भई उस वीरकी सराहना करती भई ॥ ३२ ॥

न विदाम वयं सम्यक् कर्तारं पुरुषर्षभ ॥
आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ॥३३॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! हम अपने बनायवेवारेकों जिसने तुम्हारा और हमारा नाम गोत्र किया है अच्छी तरह नहीं जानती ॥ ३३ ॥

इहाद्य सन्तमात्मानं न विदाम ततः परम् ॥
येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥ ३४ ॥

याते परे कबसे हमारी आत्मा है सोभी नहीं जानती हे वीर ! जाने ये पुरी निर्माण कीनी और जो इस पुरीका रक्षक है उसेभी नहीं जानती ॥ ३४ ॥

एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद ॥
सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ॥३५॥

हे मानद ! यह पुरुष तो मेरे सखा और स्त्रियें सखी हैं जब मैं सो जाती हूं तब यह नाग मेरी रक्षा करता है ॥ ३५ ॥

दिष्ट्याऽऽगतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे ॥
उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिन्दम ॥३६॥

हे शत्रुनाशक ! तुम यहां आये यह बहुत भली हुई तुम्हारा मंगल हो जो आप संसारी विषयोंके भोगनेकी इच्छा करते हो तो मैं बंधुओं सहित आपकी सेवा करूंगी ॥ ३६ ॥

इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो ॥
मयोपनीतान्गृह्णानः कामभोगाञ्छतं समाः ॥ ३७ ॥

हे विभो! इस नवमुखकी पुरीमें तुम वसो मो करकै प्राप्त कामभोग सैकडों वर्षतक ग्रहण करो ॥ ३७ ॥

कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम् ॥
असंपरायाभिमुखमश्वस्तनविदं पशुम् ॥ ३८ ॥

रतिज्ञानहीन मूर्ख परलोक चिंता इस लोकसे वंचित पशुतुल्य पुरुषोंको त्याग आपके सिवाय और किस्से विहार करूंगी ॥ ३८ ॥

धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं यशः ॥
लोका विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः ॥३९॥

इस गृहस्थाश्रममें धर्म अर्थ काम पुत्रसुख अमृत सम यश, शोक और रजोगुण रहित लोक सब मिलते हैं उसे यति नहीं जानते ॥३९॥

पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ॥
क्षेमं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥ ४० ॥

पितर देवता मनुष्य सब जीवमात्रके आत्माको ये गृहाश्रम है या संसारमें क्षेमको देवेवारो है ऐसे कहैं हैं ॥ ४० ॥

का नाम वीरविख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् ॥
न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम् ॥ ४१ ॥

वीरोंमें विख्यात उदार प्रियदर्शनदायक तुमसरीखेकू प्राप्त होयकर मोसरीकी ऐसी कौन नामकी है जो आपको न वरैगी ॥ ४१ ॥

कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः ।
स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ॥
योऽनाथवर्गाधिमलं घृणोद्धत-
स्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥ ४२ ॥

हे महाभुज ! सर्पकी देह समान भुजावारे पुरुषमें कौनको मन आसक्त न होयगो जो तुम अनाथसमूहोंके सब दुःखनको दयायुक्त लज्जाके अवलोकन करकै दूर करवेको विचरो हो ॥ ४२ ॥

॥ नारद उवाच ॥

इति तौ दंपती तत्र समुद्य समयं मिथः ॥
तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥ ४३ ॥

नारदजी बोले कि हे राजन् ! ऐसे वे स्त्रीपुरुष वा समयमें उद्यत हो वा पुरीमें प्रवेश कर शतवर्षतक आनंद करते भए ॥ ४३ ॥

उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः ॥
क्रीडन् परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ॥ ४४ ॥

तहां तहां गायक ललितराग गायरहे हैं, क्रीडा करे हैं स्त्रीसहित हैं, पवित्र पुष्करिणीमें स्नान करतेभए ॥ ४४ ॥

सप्तोपरिकृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः ॥
पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ॥ ४५ ॥

यामें सात तो ऊपरके द्वार हैं और दो नीचेके द्वार हैं (या शरीरमें अलग अलग विषयोंके गत्यर्थ) जिनमें जन निवास करतेहैं (सोई शरीरमें सात नेत्रादि ऊपर हैं गुदाआदि नीचे दो हैं) ॥ ४५ ॥

पञ्चद्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ॥
पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥ ४६ ॥

हे राजन्! उस पुरीके पूर्व दिशामें पांच द्वार हैं एक दक्षिणदिशाको द्वार है एक उत्तर दिशाको द्वार है पश्चिम दिशाको दो द्वार हैं, इन द्वारनके नाम अब कहताहूं ॥ ४६ ॥

खद्योताविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥
विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥४७॥

पूर्वकी ओर खद्योता और आविर्मुखी नाम दो द्वार हैं (जो दाहिने बाये नेत्र हैं) यह एक सीधमें हैं इनमें पुरंजन राजा विभ्राजित देशमें (रूप) द्युमान नामक मित्र (नेत्र इन्द्रिय) के साथ जायहै ॥४७॥

नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥
अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥ ४८ ॥

सो द्युमत्सखासे प्राप्तभई नलिनी वामदक्षिण दोनों नाक छिद्र पूर्वको है, वायुसखासे सुगंध याको प्राप्त होती भई ॥ ४८ ॥

मुख्या नाम पुरस्ताद्द्वास्तयाऽऽपणबहूदनौ ॥
विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ॥ ४९ ॥

बोलनो अनेक अन्नको स्वाद लेनो ये मुख्य मुख प्रथम है या पुरका राजा रसज्ञाता व्यवहारकारी विषयस्वाद लेतो भयो ॥ ४९॥

पितृहूर्नृपपुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरंजनः ॥
राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५० ॥

या नृपपुरीमें पितरोंको बुलायवेवारो दहिनो कर्ण, देवनको बुलायवेवारो वामकर्ण है इन श्रवणसे पुरंजन दक्षिणपंचालराज्यको भोगतो भयो " तैसे लिखा है कि ॥ पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पंचालसंज्ञितं ॥ पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेदिति " ॥ ५० ॥

देवहूर्नाम पुर्या द्वा उत्तरेण पुरंजनः ॥
राष्ट्रमुत्तरपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५१ ॥

देवनको बुलानेवाला द्वार उत्तर ओर वामकर्ण है, श्रवणसे उत्तर पंचालराज्यको सुख पुरंजनको प्राप्त होतो भयो ॥ ५१ ॥

आसुरी नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः ॥
ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः॥ ५२ ॥

आसुरी सुखदायी शिश्न नामक पच्छमको द्वार है तासे दुर्मदके कारण ग्रामक नामक विषयनको प्राप्त होते भए ॥ ५२ ॥

निर्ऋतिर्नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः ॥
वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥ ५३ ॥

निर्ऋतिनाम पश्चिमको द्वार गुदा है उससे मलत्याग होयहै पायु इंद्रिय सहित पुरंजन मल त्यागते भए ॥५३॥

अन्धावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ ॥
अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥५४॥

इन पुरवासीनके मध्यमें अंधवत् पाद हस्त भए, नेत्रोंको पति पुरंजन इन इंद्रियोंसे जाते भए, कर्म करते भए ॥ ५४॥

स यर्ह्यन्तःपुरगतो विषूचीनसमन्वितः ॥
मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥५५॥

सो जब अंतःपुरमें गयो तब पवनसहित मोह प्रसन्नता हर्ष बुद्धि स्त्रीपुत्ररूप इंद्रियोंसे प्राप्त होतोभयो ॥ ५५ ॥

एवं कर्मसु संयुक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः ॥
महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥ ५६ ॥

ऐसे कर्ममें आसक्त कामी आत्मा ठगोभयो बुद्धिहीन नृप बुद्धिरूप पटराणीकी आज्ञा मानतो भयो जो वह कहे सो करतो भयो ॥५६॥

क्वचित् पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः ॥
अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति ॥५७॥

पुरंजन मदमें विह्वल होकर जो पुरंजनी मदिरा पीये है तो आपभी पीवै वो खाय तो वोभी खावे वो भक्षण करे तो वोभी भक्षण करे है५७

क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदन्त्यां रुदति क्वचित् ॥
क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनुजल्पति ॥५८॥

वो गावे तो वोभी गावे है वो रोवे तो पुरंजनभी रोवे वो हंसे तो वोभी हंसैहै, वो बोले तो वोभी बोलै है ॥ ५८ ॥

---

१ इस समय तौ स्त्रीकेही वशीभूत बहुत है—एक पंडितजीने कथा बांचनेमें कही कि जो गुरुदीक्षा ले है उसे फिर कुछ कार्य करना शेष नहीं रहता, एक लाला जो बडे धनी है, उनके पुत्रने कही पंडितजी कंठी देदो, पंडितजीनै माला कंठी देदी,तब उस दिनसै वह कथा सुन्नेभी नहीं आया, एक दिन पंडितजीको कहीं मार्गमें मिला तब उन्होंने कही कि कथामें नहीं आते ? यह बोले महाराज ! अब कृतार्थ होगये कंठी लेली अब सुन्नेकी क्या आवश्यकता है, और कलकू हम दूसरे देशको जायगे कभी दर्शन दीजो, पंडितजी दो तीन वर्षके पीछे उसके घर गये, उसने ठहराया,भोजनकी तौ बडी पूछगछ करी, जब तीन चार दिनके पीछे बिदा मांगी, तब लालाजी बोले ठहरो, इसी प्रकार बहुत वार कहतेही रहे, परन्तु दिया कुछ नहीं एक दिन उनकी स्त्रीने उन्हें देखकर पुछवाया तुम कौन हो कहां रहो हो पंडितजी बोले यह लाला हमारा चेला है, कुछ लेनेको आये हैं, पर यह रोज ठहरनेको कहता है कुछ देता नहीं, स्त्रीने सुनतेही कही महाराज ! तुमारो चेला है तौ तुमारा कहना नहीं मान्ता, अच्छा यह लो, ऐसा कह अपनी पहुंचि पंडितजीको उतार दी और बोली भयरहित इन्हें लो पंडितजीने डरते २ लेली, इधर वह मुख लपेटकर पड़रही, लालाजी घर आकर बोले कैसे पडी हो ? वह बोली कि पहुंचि खोगई लाला बोले और बनजायगी, वह बोली जब आजायगी जभी भोजन करूंगी, लालाजीनै तुरत बनवादी और बोले अब तौ भोजनादि करो वह उठी और दूसरे दिन पंडितजीको बुलाय नई पहुंची दिखाकर कही कि अब बताओ तुह्मारा चेला है कि मेरा ? पंडितजी चुप हुए उसने कही कलकी पहुंची बिदाईमें ले घर आयो, यह कुछ न देगा,पंडितजी वह ले घर आये ।

क्वचिद्धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनुतिष्ठति ॥
अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥५९॥

पुरंजनी धावै तो पुरंजनभी दौडै है, वा बैठे तो वोभी बैठे है वो सोयजाय तो वोभी सोयजाय है वो बैठी होजाय तो वोभी बैठा होजाय है ॥ ५९ ॥

क्वचिच्छृणोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति ॥
क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ६०

वो सुनै है तो वोभी सुनै है, वो देखै है तो वोभी देखैहै वो सूंघै तो वोभी सूंघै है वो छुवै तो येभी छुवै है ॥ ६० ॥

क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ॥
अनुहृष्यति हृष्यन्त्यां मुदितामनुमोदते ॥ ६१ ॥

जो अपनी स्त्रीको शोच करती देखै है तो आपभी दीनकी नाई शोक करैहै, वो हर्षित होय तो वोभी हर्षित होयहै, वो मुदित होय है तो वोभी मुदित होयहै ॥ ६१ ॥

विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः ॥
नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥६२॥

इति श्रीपुरञ्जनाख्याने पुरंजनपुरंजनीरमणचरित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सब प्रकारसे वाकी स्त्रीने जब वाकूं वस करलियो, तब वह अपने असंगत्वादि स्वभावोंको दूर कर अपनी अभिलाषा न होनेपरभी क्रीडामृगके समान भार्याके वचन अनुसार चलता है ॥ ६२ ॥

इति श्रीपुरंजनाख्याने पुरंजनपुरंजनीरमणचरित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ

द्वितीयोऽध्यायः ।

॥ नारद उवाच ॥

स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ॥
द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले कि एक समय वह पुरंजन जीव बडासा एक धनुष्य (मैंही कर्ता भोक्ता हूं ऐसा अहंकार) धारण कर पञ्चज्ञानेंद्रियरूप शीघ्र जायवेवारे पांच अश्वोंसे युक्त अहंता ममतारूप दो डंडोंसे युक्त पुण्यपापरूप दो पैया लगे मायारूप धरी त्रिगुणरूप तीन वेणु पांचप्राणरूपी पांच बन्धनसे बंधे रथपर बैठ विहार करनेको गया ॥ १ ॥

एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् ॥
पञ्चप्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥ २ ॥

मनरूप रस्सी बुद्धिरूप सारथी एक हृदयरूप स्थान रथीके बैठवेकी ठौर है, दो शोकमोहरूप रथके धुराके बन्धन है, पंचकर्मेंद्रिय विक्रम जाकी गति है, सप्त त्वचारूप जामें वरूथ पांच शब्दादि विषय प्रक्षेपकारी हैं ॥ २ ॥

हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माऽक्षयेषुधिः ॥
एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद् वनम् ॥ ३ ॥

सुवर्णके आभरण सुवर्णको वखतर रजोगुणरूपी पहरे अक्षय बाणभरो तर्कस (अनंत वासना), दश सिपाही (दश इन्द्रिय)

एक उनका अधिपति (मन) ग्यारह जनोंको संग ले पांच प्रकार (पंचेन्द्रिय) की गतिवाले वनको गया ॥ ३ ॥

चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः ॥
विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥ ४ ॥

धनुषमें राग द्वेषादि बाण चढाय भोगादिरूप स्थानधारी मृगसमानविषयोंके मारने (भोगने)की जाकी लालसा से पुरंजन जीव त्यागके अयोग्य विवेकवती बुद्धिकूं त्यागकर शिकार खेलवेकों जाते भए॥४॥

आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ॥
न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥ ५ ॥

आसुरी वृत्तिमें स्थित होयके घोरात्मा निर्दयी पैने बाणोंसे वनमें वनके जीवनकों हनतो भयो ॥ ५ ॥

तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान् पशून् वने ॥
यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ॥ ६ ॥

तीर्थश्राद्धादिको राजा पवित्र पशूनकों वनमें लुब्धककी नांई मार लावे, ये नियम है ॥ ६ ॥

य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः ॥
कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥ ७ ॥

जो मनुष्य विद्वान् ऐसे निश्चय कर कर्मनकों करे हैं, हे राजेंद्र! वा कर्म करकै ज्ञानसे वो लिप्त न होयगो ॥ ७ ॥

अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ॥
गुणप्रवाहे पतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥ ८ ॥

---

१ शास्त्रमें मांस खानेका मृगयाका विधान नहीं है किन्तु जिनके चित्त हिंसामें आसक्त हैं उनको उस कार्यसे पृथक करनेहीके निमित्त उपदेश है कि सर्वथा हिंसा न करनी, केवल श्राद्धमें सोभी सब पशु नहीं किन्तु जिसकी आज्ञा है,सोभी अधिक नहीं जितनी आवश्यकता हो इत्यादि वाक्य हिंसा निवृत्तिकेही निमित्त हैं ।

यासे अन्यथा कर्म करै तौ मानमें आरूढ होयकर बंधनको प्राप्त होता है, या संसारमें गिर बुद्धि नष्ट होनेसे नर्कमें जाय हैं ॥ ८ ॥

तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ॥
विप्लवोऽभूद् दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम्॥९॥

उस वनमें विचित्र पंखवाले बाणोंसे भग्न शरीर हो दुःखी मृगौंका नाश होने लगा जिसको दयालु पुरुष सहन नहीं करसक्ते ॥ ९ ॥

शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् ॥
मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन्श्रममध्यगात् १०॥

खगोश शूकर महिष लीलगाय रुरु शेहो पवित्र अपवित्र अनेक पशूनको मारते अपने स्थानको आते भए ॥ १० ॥

ततः क्षुत्तृट्परिश्रान्तो निवृत्तो गृहमेयिवान् ॥
कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥ ११ ॥

तब भूखप्याससे थके भए, बगदके घरपर आए स्नान भोजन कर सब परिश्रम दूर होनेपर शय्यापै आए ॥ ११ ॥

आत्मानमर्हयांचक्रे धूपलेपस्रगादिभिः ॥
साध्वलंकृतसर्वाङ्गो महिष्यामादधे मनः ॥ १२ ॥

धूप चन्दन मालासे शरीरको शोभित करे सब अंगमें सुन्दर गहिने पहिरे स्त्रीमें मनको लगाये ॥ १२ ॥

तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः ॥
न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥ १३ ॥

तृप्त भए हृष्ट और महा गर्वसे कामविवशचित्त हो राजा महलोंमें गये परन्तु तहां घरका कार्य संपादन करनेहारी रानीको न देखा॥१३॥

अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् ॥
अपि वः कुशलं रामा सेश्वरीणां यथा पुरा ॥ १४ ॥

तब अंतःपुरकी स्त्रीनसे पुरंजन पूछते भए हे स्त्रियो! तुह्मारी कुशल तौ है अपनी स्वामिनी सहित जैसे पहिले विचरतीथी तैसे या समय क्यों नहीं विचरो हो ॥ १४ ॥

न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसंपदः ॥
यदि न स्याद्गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥ १५॥
व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः को नामासीत दीनवत् ॥
मदीयं मानसं नित्यं मोहयन्ती पदे पदे ॥ १६ ॥

गृहमें गृहकी सम्पदा तैसी अब नहीं रुचै है, याको कहा कारण है जिस गृहमें माता वा पतिव्रता स्त्री नहीं होती वह घर विना पहियेके रथकी समान है ऐसे घरमें दुःखी हो कौन पुरुष रहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

क वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥
या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥ १७ ॥

वो ललना कहां है,जो या व्यसनरूप सागरमें डूबते भये मोकों उबारतीही, और पदपदमें मेरी बुद्धिको प्रकाश करती रहतीही, सो कहां गई ॥ १७॥

॥ रामा ऊचुः ॥

नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद् व्यवस्यति ॥
भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१८॥

स्त्रियें बोलीं हे नरनाथ! हे शत्रुनाशक! तुमारी प्रियाको जो निश्चय है सो हम नहीं जानै है, परंतु बिन बिछाये धरतीपर सोय रही है ॥ १८ ॥

॥ नारद उवाच ॥

पुरंजनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ॥
तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥ १९ ॥

श्रीनारदजी बोले कि पुरंजन अपनी स्त्रीको धरतीमें सोई देखकर ताके संगसे ज्ञान नष्ट होय बडी भारी विवशताको प्राप्त होतो भयो ॥१९॥

सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता ॥
प्रेयस्याः स्नेहसंरम्भलिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ॥२०॥

मधुर वाणीसें सांत्वना कर दुःखी हृदयसे प्यारीके स्नेहके क्रोधका कोई चिन्हभी न देखा जिस्से जानता कि प्यारीने यह प्रणयकोप किया है ॥ २० ॥

अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः ॥
पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालितम् ॥ २१ ॥

नीतिमें चतुर वीर धीरेसे वाके पास जाय गोदमें चरण राख ललित प्रियाके दोनों चरणकों छूयके बोले ॥ २१ ॥

॥ पुरंजन उवाच ॥

नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ॥
कृतागःस्वात्मसात् कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ॥२२

पुरंजन बोले कि हे शुभे ! दास अपराध करैं और उन्हें दंड न हो तो वे मंदभागी जान्ने स्वामियोंका धर्म है कि अपराधी दासोंको शिक्षा करनेके निमित्त दंड दे ॥ २२ ॥

परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः ॥
बालो न वेद तत् तन्वि बन्धुकृत्यममर्षणः ॥ २३ ॥

अपने नौकरोंमें जो प्रभु दंड दे हैं, वो परम अनुग्रह है, हे तन्वि बालक इस बातको नहीं जाने है और जो सेवक दंडसे मनमें दुःख मान क्रोध करै उसे मूर्ख जान्ना उचित है ॥ २३ ॥

सा त्वं मुखं सुदति सुभ्रनुरागभार-।
ब्रीडाविलम्बविलसद्धसितावलोकम् ॥
नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः ।
स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥ २४ ॥

हे सुदति ! हे सुभ्रु ! हे मनस्विनी ! अनुराग भरे लाजसे शोभित, हसितयुक्त चितवन, नीली अलकपंक्ति उच्चनासिका मनोहर वचन युक्त मुखकों अपनोंको दिखाओ ॥ २४ ॥

तस्मिन् दधे दममहं तव वीरपत्नि ।
योऽन्यत्र भूसुरकुलात् कृतकिल्बिषस्तम् ॥
पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्या-
मन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥ २५ ॥

हे मोसरीके वीरकी पत्नि ! एक ब्राह्मण और भगवद्दासके विना और जो कोई तेरो अपराध करवेवारो है,वामें दंड धरौंगे, कारण कि त्रिलोकीमें वा त्रिलोकीसे अन्यत्र मेरा डर न मानकर आनंदसे रहनेहारे कोई मुझे नहीं दिखता ॥ २५ ॥

वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं ।
संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम् ॥
पश्येस्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ ।
बिम्बाधरं विगतकुङ्कमपङ्करागम् ॥ २६ ॥

तिलक शून्य,मलिन,हर्षरहित,कोपसेभयंकर तेरो मुख कभी हमने न देखो, शोकसे लचे सुंदर स्तनभी ऐसे कभी न देखे, कुंकुमकीसी कांतिरहित कंदूरीके फलसमान अधर शोकग्रस्त न देखे ॥२६॥

तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य ।
स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ॥

का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेग-।
विस्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये ॥ २७ ॥
इति श्रीपुरंजनाख्याने पुरंजनेन स्वापराधक्षमा-
पन-वर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तातै मोपै आप प्रसन्न हो मैं तेरी आज्ञा विना व्यसनमें आतुर होय शिकारको गयो,अब कामवेगसे धैर्यरहित,तथा अपने आधीन मित्ररूप अपने भर्ताकी कामनावाली कौन नारी उचित कृत्यमें न भजै[1] ॥ २७ ॥

इति श्रीपुरंजनाख्याने पुरंजनेन स्वापराधक्षमापनवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ

तृतीयोऽध्यायः ।

॥ नारद उवाच ॥

इत्थं पुरंजनं सम्यग् वशमानीय विभ्रमैः ॥
पुरंजनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले कि हे महाराज ! या प्रकार पुरंजनी पुरंजनको अपने सुन्दर कटाक्षोंसें मोहित करकैं वशकर रमण कराती भई आपभी रमण करती भई ॥ १ ॥

---

१ " तापे एक पद है ॥ बिहाग ॥ तिताला ॥ तिरिया जो न होत हरिदासी ॥ टेर ॥ सो तिरिया गनिकासम जानो दुखरावति जगहांसी ॥१॥ परमारथ कबहू नहिं जानति आपन परी गलफांसी ॥ २ ॥ कहा भयो रूपगुण सुंदर नाहि न श्याम उपासी ॥ ३ ॥ व्यासदास यह संगत तजिये मिटत है जमकी फांसी ॥ ४ ॥ "

स राजा महिषीं राजन् सुस्नातां रुचिराननाम् ॥
कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥ २ ॥

हे राजन् ! सो राजा सुन्दर स्नान करीभई, सुन्दर मुखवारी स्वस्त्ययन युक्त तृप्त अपने निकट रानीको आता देख राजाने उसका बहुत सत्कार किया ॥ २ ॥

तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो ।
रहोऽनु मन्त्रैरपकृष्टचेतनः ॥
न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं ।
दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥ ३ ॥

तासे लिपटे सिले कन्धासे उसै आलिंगन कर कंठ लगाय एकांतमें गुप्त भाषणसे चित्त वशीभूत होनेके कारण दिनरात दुरत्यय कालवेगको न जानतो भयो, स्त्रीके संगमें दिनरात व्यतीत हुए ॥३॥

शयान उन्नद्धमदो महामना ।
महाऽर्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ॥
तामेव वीरो मनुते परं यत- ।
स्तमोऽभिभूतो न निजं परं च यत् ॥ ४ ॥

महामदांध महामनस्वी महासेजपै स्त्रीकी भुजाको तकिया लगाये सोता वाहीकों श्रेष्ठ मानता भया, और तमसे तिरस्कृत हो वह वीर अपना परायाभी न मानता भया ॥ ४ ॥

तयैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ॥
क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥ ५ ॥

हे राजेन्द्र! कामासक्त हो इस प्रकार उसके साथ बिहार करते करते उनकी नवीन अवस्था क्षणार्द्धकी नाई व्यतीत होती भई ॥५॥

तस्यामजनयत् पुत्रान् पुरंजन्यां पुरंजनः ॥
शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥ ६ ॥

पुरंजन पुरंजनीमें इंद्रियोंकी परिणामरूप एकादशसहस्र पुत्र रचतो भयो,आधी आयु सम्राटकी व्यतीत होतीभई ॥६॥

दुहितॄर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ॥
शीलौदार्यगुणोपेताः पौरंजन्यः प्रजापते ॥ ७ ॥

हे प्रजापते ! एकसो दस बेटी भई,वे पितृमातृयश करवेवारी भई, शीलउदारगुणयुक्त पौरंजन्यवंश भयो ॥ ७ ॥

स पञ्चालपतिः पुत्रान् पितृवंशविवर्धनान् ॥
दारैः संयोजयामास दुहितॄः सदृशैर्वरैः ॥ ८ ॥

सो पंचालपति पिताके वंश बढानेवारे पुत्रनको विवाह करतो भयो, समान वरनको बेटी व्याही ॥ ८ ॥

पुत्राणां चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् ॥
यैवै पौरंजनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥ ९ ॥

उन पुत्रनके एक एक शतपुत्र भए, जिन करके पौरंजनवंश पंचालदेशमें बढो ॥ ९ ॥

तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ॥
निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥ १० ॥

उनके दायभागी गृहखजानेके मालक विन सबोंमें महाममताके वश होयकर विषयोंमें फस जातो भयो ॥ १० ॥

ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ॥
देवान् पितॄन् भूतपतीन् नानाकामो यथा भवान् ११

यह राजाभी तेरी समान दीक्षा लेके विविध प्रकारकी अभि-

लाषाओंके भयंकर पशु हिंसावारे यज्ञोंसे देवता पितृ और भूतप-
तियोंका यजन किया ॥ ११ ॥

युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः ॥
आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम्॥१२

ऐसे योग्य प्रमत्त कुटुंबमें आसक्त चित्तकू वो काल आयके प्राप्त
भयो जो योषितानको अप्रिय है, वाको नाम जरापन है ॥१२॥

चण्डवेग इति ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ॥
गन्धर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥१३ ॥

हे नृप ! चंडवेग (वर्ष) नाम एक गंधर्वोंको अधिपति हो, वाके
बली गंधर्व ३६० (दिन) होते भए ॥ १३ ॥

गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः ॥
परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥१४॥

उनकी उतनीही स्त्रियें (रात्रि) होती भई जो सित असित नामवाली
है और बलवान हो जो विचरण करके इस नगरीको लुटती है ॥१४॥

ते चण्डवेगानुचराः पुरंजनपुरं यदा ॥
हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत् प्रजागरः ॥ १५ ॥

जब चंडवेगके अनुचर पुरंजनके पुरको हरवेको प्रारंभ करते भये,
तब प्राणरूप प्रजागर मनै करतो भयो ॥ १५ ॥

स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः ॥
पुरंजनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे बली ॥ १६ ॥

सातसे इक्कीस बली गंधर्वोंसे पुरंजन पुरको अध्यक्ष बलवान नाग
सौ वर्ष युद्ध करता हुआ ॥१६॥

क्षीयमाणे स्वसंबन्ध एकस्मिन् बहुभिर्युधा ॥
चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥ १७ ॥

जब बहुत जनोंके साथ इकला युद्ध करनेसे यह नाग क्षीणबल होने लगता है तब पुरंजन देश नगर और कुटुम्ब सहित व्याकुल हो चिन्तामें प्राप्त होता है ॥१७॥

स एव पुर्यां मधुभुक् पञ्चालेषु स्वपार्षदैः ॥
उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद् भयम्॥१८॥

परन्तु मधुभोजी स्वपार्षदों सहित पंचाल देशमें प्राप्त बलिको ग्रहण करता स्त्रीजित होनेसे भयको नहीं प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

कालस्य दुहिता काचित्त्रिलोकीं वरमिच्छती ॥
पर्यटन्ती न बर्हिष्मन् प्रत्यनन्दत कश्चन ॥ १९ ॥

हे राजन् ! इसी अवसरमें कालकी कोई दुहिता त्रिलोकीमें वरकी इच्छा करती डोलती भई परन्तु कोई वांकी सराहना न करतो भयो किसीने उसके वरणकी इच्छा नहीं की ॥१९॥

दौर्भाग्येनात्मना लोके विश्रुता दुर्भगेति सा ॥
या तुष्टा राजर्षये तु वृताऽदात् पूरवे वरम् ॥ २० ॥

अपनी आत्माकी दुर्भाग्यता करके लोकमें वह दुर्भगा विख्यात थी, इसका प्रथम पुरु राजाने वरण किया था इस कारण इसने प्रसन्न हो राजाको वर दिया ॥ २० ॥

कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ॥
वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥ २१ ॥

किसी समय पर्यटन करती कामसे मोहित हो वह ब्रह्मलोकसे मही-पर प्राप्त हो महाव्रती हमसे बोली कि तुम मुझे वरण करो ॥२१॥

मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् ॥
स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥ २२ ॥

जब मैंने उसे स्वीकार न किया तब मुझे निवृत्त जा क्रोधकर दुःसह शाप देती भई बोली, हे मुनि ! मेरी यांचासे तुम विमुख भये सो तुम एकजगै स्थित न रह सकोगे (सो प्रगट है युवा पुरुष एक स्थानपर स्थित नहीं रहते जराग्रस्त पडे रहते हैं) ॥२२॥

ततो विहतसंकल्पा कन्यका यवनेश्वरम् ॥
मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥२३॥

जब उसका अभिलाष पूर्ण न हुआ तब वह मेरी आज्ञासे यवनीके अधिपति भयको वरण करने गई और बोली ॥ २३ ॥

ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् ॥
संकल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति॥२४॥

हे वीर ! मनवांछित पति यवननके ऋषभ तुमकूं मैं वरूंगी, तुमारेमें जीवनके संकल्प नाश न होयगे ॥ २४ ॥

द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ ॥
यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥ २५ ॥

लोक और शास्त्रकी रीतिके अनुसार जो देने योग्य वस्तुको नहीं देता और लेने योग्य वस्तुको नहीं लेता यह दोनों मूर्ख और असद्ग्राही शोच करते हैं ॥ २५ ॥

अथो भजस्व मां भद्र भजतीं मे दयां कुरु ॥
एतावान् पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते ॥ २६ ॥

अब मोको भजो हे मंगलरूप ! भजती भई मोपर दया करो, पुरुषको येही धर्म है जो आर्तपर कृपा करनी ॥ २६ ॥

कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः ॥
चिकीर्षुर्दैव गुह्यं स सस्मितां तामभाषत ॥ २७ ॥

कालकन्याको कह्यो वचन सुन यवनेश्वर देवताओंसेभी गुप्त बात करनेकी इच्छासे मुसकाय कर बाते बोलो ॥ २७ ॥

मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ॥
नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमताम्॥२८॥

आत्मज्ञानसे मैं तुमको पति निरूपण कर चुकाहूं तू अमंगलरूप लोकोंको अमाननीय है इस्सै प्रार्थना करनेपर तो कोई तुझे स्वीकार न करैगा ॥ २८ ॥

त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ॥
याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥ २९ ॥

कर्मसे विनिर्मित्त लोकको तू अप्रगट गतिसे भोग मेरी सेना ले जाओ तो प्रजानाशको प्राप्त होगी ॥ २९ ॥

प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥
चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः३०

इति श्रीपुरञ्जनाख्याने कालकन्योपाख्यानवर्णनं
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ये प्रज्वार गन्धर्व मेरो भाई है, तू मेरी बहन होजा और भयंकर सेना लेकर जाओ मैंभी तुम्हारे पीछे अप्रगट गति होकर विचरूंगा ॥३०॥

इति श्रीपुरंजनाख्याने कालकन्योपाख्यानवर्णनं
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ

चतुर्थोऽध्यायः ।

॥ नारद उवाच ॥

सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः ॥
प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले कि हे बर्हिष्मन् ! भयनामा यवनके सेनाके लोग रोगप्रज्वार और कालकन्याके सहित या धरतीपर विचरते भए ॥ १॥

त एकदा तु रभसा पुरंजनपुरीं नृप ॥
रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥ २ ॥

हे नृप! वे एक समय वेगसे भूमिके भोगयुक्त, जीर्ण, प्राणरूप सर्पेसे पालित, पुरंजनकी पुरीको रोकते भये ॥ २ ॥

कालकन्याऽपि बुभुजे पुरञ्जनपुरं बलात् ॥
यथाऽभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ॥ ३ ॥

कालकन्याभी पुरंजनकी पुरीको बलसे भोगती भई, जासे तिरस्कृत पुरुष शीघ्र निस्सारताको प्राप्त होवे हैं ॥ ३ ॥

तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतो दिशम् ॥
द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन् सकलां पुरीम् ॥४॥

ता करके भोगे भये यवन द्वारोंमें सब ओरसें प्रविष्ट होकर सब पुरीको पीडा देते भये ॥ ४ ॥

तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरञ्जनः ॥
अवापोरुविधांस्तापान् कुटुम्बी ममताकुलः ॥ ५ ॥

जब वा पुरीमें पीडा भई, तब अभिमानी पुरंजन कुटुंबी ममतामें व्याकुल बहुत तापोंको प्राप्त होतो भयो ॥ ५ ॥

कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ॥
नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥

उस कन्यासे आलिंगन करनेके कारण कृपण तथा कांतिहीन हो पुरंजन अपना ऐश्वर्य गंवाय सामर्थहीन होगया और वे गंधर्व और यवन उसकी पुरीको विध्वंस करने लगे ॥ ६ ॥

विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ॥
पुत्रान् पौत्राऽनुगामात्यान् जायां च गतसौहृदाम् ॥७॥

अपनी पुरीको टूटी देख आदर हीन अपनेसे प्रतिकूल चलनेहारे पुत्र पौत्र चाकर मंत्री और स्त्रीकोभी सुहृदता त्यागे देखता हुआ (जरा अवस्थामें बुद्धि मलीन होती है) ॥ ७ ॥

आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालानरिदूषितान् ॥
दुरन्तचिन्तामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥

अपनी देहको जरा कन्यासे ग्रसित देख और पंचाल देशोंको वैरियोंसे पीडित देख, पुरंजन महाचिन्तामें मग्न हुआ जिसके दूर करनेका उपाय न मिला ॥ ८ ॥

कामानभिलषन् दीनो यातयामांश्च कन्यया ॥
विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥ ९ ॥

यद्यपि कालकी कन्याके भोगनेसे उसके सब विषय सारहीन होगये थे तथापि दीन पुरंजन उन्हीकी इच्छा करता परलोक कृत्य और इस लोकके पुत्रादि स्नेहसे शून्य होकरभी पुत्र स्त्रीका लालन करताथा॥९॥

गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् ॥
हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥ १० ॥

गंधर्व यवनोंसे घिरी कालकी कन्या जरासैं मर्दित वा पुरीको इच्छा न होनेपरभी पुरंजनरूप जीवराजा त्यागकी इच्छा करते भये ॥१०॥

भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ॥
ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥११॥

तब भय मृत्युका भ्राता प्रज्वार कालज्वर आय उपस्थित भयो, सो भाईके प्रियकी इच्छा करकै सब यवन वा पुरीकों जरावतो भयो॥११

तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः ॥
कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः॥१२॥

पुरवासी सब परिवार सहित जब वो पुरी जरगई, तब कुटुंबी वा कुटुंबिनीके साथ राजा वंश सहित संतापको प्राप्त होतो भयो॥१२॥

यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया ॥
पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३॥

यवनोंकरकै सब स्थान जब रुक गए कालकन्याने पुरी सब ग्रसी प्रज्वारसें पुरी सब घिरी देख पुरपाल नाग अति ताप करता भया१३'

न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः ॥
गन्तुमैच्छत्तु ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥१४॥

यह नाग जब महादुःखसे कंपित होकर जब उस पुरीकी रक्षामें समर्थ न हुआ तब जलते वृक्षमेंसे जैसे सर्प निकलनेकी अभिलाषा करे इसप्रकार उस नगरीसे निकलनेकी इच्छा की ॥ १४ ॥

शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः ॥
यवनैरररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ॥ १५ ॥

हे राजन् ! जब सब अवयव याके शिथिल भए, गंधर्वोंनें सब बल हरलीनो और शत्रुरूप यवनोंनें जब पुरीको रोकी तब पुरंजन रोतोभयो ॥ १५ ॥

दुहितॄः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् ॥
स्वत्वावशिष्टं यत् किंचिद् गृहकोशपरिच्छदम् १६

दुहिता पुत्र पौत्र जमाई पार्षद् गृह खजानो सब परिवार यामें एक स्वत्वमात्र बाकी रहिगयो, ये मेरे हैं ये स्वत्वभाव भयो ॥ १६ ॥

अहं ममेति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही ॥
दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते ॥ १७ ॥

अहंता ममतासे अपना माने कुमतिसे घरके भीतर बंधाहुआ गृहस्थी पुरंजन स्त्रीके वियोगके समय विचारने लगा ॥ १७ ॥

लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी ॥
वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती ॥ १८ ॥

मैं जब और लोकांतरकों जाऊंगो, तो अनाथा कुटुंबिनी ये बालकनको सोच करतीभई कैसे वर्तैंगी ॥ १८ ॥

न मय्यनाशिते भुङ्क्ते नास्नाते स्नाति मत्परा ॥
मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग् भयात् ॥१९॥

जो मेरे बिनाखाए खाती नहीं मेरे बिनान्हाये न्हाती नहीं, मेरी भक्त जो मेरे रोष करने पर त्रसित होती, मेरे झिडकने पर भयके मारे मौन हो बैठ जाती है ॥ १९ ॥

प्रबोधयति मामज्ञं व्युषिते शोककर्शिता ॥
वर्त्मैतद् गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥ २० ॥

मेरे व्याकुल होने पर मुझे बोध करती है मेरे परदेशमें जाने पर शोकसे कर्षित होतीथी गृहस्थनको येही मार्ग है पुत्रवती ही तोभी मेरे विना मरीसी होजाती थी ॥ २० ॥

कथं नु दारका दीना दारकीर्वा परायणाः ॥
वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥२१॥

ये दीन वालिकी वालक मेरे परायण हैं, मैं जव जाऊंगो तो कैसे वर्तैंगी, जैसे सागरमें नाव टूटनैसे उसके वैठनेवाले व्याकुल होतेहैं ऐसे उन सवकी दशा होतीहै ॥ २१ ॥

एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तमतदर्हणम् ॥
ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाऽभ्यपद्यत ॥ २२ ॥

ऐसे कृपणबुद्धिसें अयोग्य शोच करतेहुएकूं पकडनेकी वुद्धिकर भयनामक यवनराज आनकर प्राप्तभयो ॥ २२ ॥

पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् ॥
अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥ २३ ॥

पशुकी नाई यवन याको अपने घर ले जाते भए उनके अनुयायी अत्यंत आतुर होय शोकके मारे उनके कुटुम्बी उसके संग दौडे २३

पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजंगमः ॥
यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥ २४ ॥

जो सर्प वाकूं रोके रहताथा वोभी पुरीको त्यागकर जव गयो ताके पीछे सव पुरी विशीर्ण हो अपने आप नाश होय अपनी प्रकृतिकों गई ॥ २४ ॥

विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा ॥
नाविन्दत् तमसाऽऽविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥ २५ ॥

हठसे वली यवनने जव वाकों खींचो,तो तमोगुणसे आविष्ट होनेके कारण पुरंजनको अपने पूर्व मित्रका स्मरण न आया ॥ २५ ॥

तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना ॥
कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् २६

या दया रहितने जो यज्ञके पशु मारे है सो वे याके अपराधकों स्मरण कर क्रोधित हो कुहाडोंसे उसै छेदने लगे ॥ २६ ॥

अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः ॥
शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासङ्गदूषितः ॥ २७ ॥

अपार तममें स्मृति नष्ट होनेके कारण वा प्रमदाके संगसे दूषित हो बहुत वर्षपर्यंत पीडाकूं भोग कर ॥ २७ ॥

तामेव मनसा गृह्णन् बभूव प्रमदोत्तमा ॥
अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥ २८ ॥

वो पुरंजन वा पुरंजनी स्त्रीकोंही मनमें स्मरण करता रहा यासे राजोंमें श्रेष्ठ विदर्भराजके घरमें जायकर स्त्रीका जन्म पाताहुआ या प्रसंगमें ये जानने कि स्त्रीध्यानसें स्त्री होयं है ॥ २८ ॥

उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः ॥
युधि निर्जित्य राजन्यान् पाण्ड्यः परपुरंजयः ॥ २९ ॥

युद्धमें शत्रुओंको मारकर पांड्य देशके राजा मलयध्वज वैदर्भीकों व्याहते भए " मलय उपलक्षितदक्षिणदेशध्वज इव दर्शनीयः " वो देश विष्णुकी भक्तिको प्रधानदेश है "पंडा निश्चयबुद्धिस्तामर्हतीति पांड्यः" अर्थात् पुरंजनको भागवतका संग हुआ ॥ २९ ॥

तस्यां स जनयांचक्र आत्मजामसितेक्षणाम् ॥
यवीयसः सप्त सुतान् सप्त द्रविडभूभृतः ॥ ३० ॥

वो मलयध्वज वामें श्रीकृष्णमें रुचीवारी श्रीकृष्णसेवारूप कन्या उत्पन्न करतो भयो द्रविडदेशका राजा श्रवण, कीर्तन, विष्णोः स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्यरूप सप्त तरुण सुतनकों उत्पन्न करतोभयो ॥ ३० ॥

---

१ पतिव्रताके ध्यानसे पूर्वजन्मके धर्मके कारण श्रेष्ठाचार विदर्भके घर जन्मै हुआ उस धर्मात्मा राजाके संगसै मलयध्वज वैष्णवका संग हुआ उस भक्तिसै वैराग्य हुआ तथा पतिरूप गुरुकी सेवा करनेसै भगवानकी कृपासै ज्ञान प्राप्त होनेके कारण मुक्तिको प्राप्त हुआ ।

एकैकस्याभवत् तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् ॥
भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परम् ॥ २१ ॥

हे राजन् ! उन पूर्वोक्त सप्त श्रवण आदि अर्बुद अर्बुद सुत भए, जो इस पृथ्वीका मन्वन्तरसैभी अधिक पालन करने लगे ॥ २१ ॥

अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् ॥
यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः॥२२॥

" अंगानि निष्क्रियाणि स्त्यायति संघातयतीति अगस्त्यो मनः " अगस्त्य मनको नाम है सो मन व्रत धारवेवारी पहिली कृष्णसेवारुचिरूप दुहिताकूं व्याहतो भयो, जामें इध्मवाहात्मज मुनि दृढच्युत श्रीकृष्णप्रीतिरूप विराग भयो (इध्मवाह आत्मजो यस्य सः ॥ तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्सामित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमिति)॥२२॥

विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ॥
आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥२३॥

राजर्षि मलयध्वज पुत्रोंके अर्थ पृथिवीनकों विभागकर श्रीकृष्णकी आराधन करवेकों कुलाचल पर्वतपर जातो भयो ॥ २३ ॥

हित्वा गृहान् सुतान् भोगान् वैदर्भी मदिरेक्षणा ॥
अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम्॥२४॥

मदभरे नेत्रवारी वैदर्भी गृह सुत भोगनकों त्यागकर जैसे चंद्रप्रभा चंद्रके पाछे दौडे तैसे पांड्येशके पीछे जाती भई ॥ २४ ॥

तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका ॥
तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन् ॥ २५ ॥

तहां चंद्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका नदियोंके पवित्र जल करकै अन्तःकरण और अपनपेको स्नानकर शुद्ध करती भई ॥ २५ ॥

कन्दाऽष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ॥
वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः ॥ ३६ ॥

कंद कोय मूल फल पुष्प पर्ण तृण जलसे धीरे धीरे पायकर शरीर कृशकर तप करती भई ॥३६ ॥

शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये ॥
सुखदुःख इति द्वन्द्वान्यजयत् समदर्शनः ॥ ३७ ॥

शीत ग्रीष्म पवन वर्षा क्षुधा प्यास प्रिय अप्रिय सुख दुःखकों जीतते भए समदर्शी होते भए ॥ ३७ ॥

तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ॥
युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥ ३८ ॥

तप विद्या यम नियमसे सब कषाय पक गए, इंद्रियें पवन अंतःकरण जीत ब्रह्ममें आत्माकों लगावते भए ॥ ३८ ॥

आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ॥
वासुदेवे भगवति नान्यद् वेदोद्वहन् रतिम् ॥३९॥

खंभकी समान एक जगह दिव्यशतवर्ष स्थित रहे, वासुदेव भगवानमें प्रीत करते और कुछ न जानते भए ॥ ३९ ॥

स व्यापकतयात्मानं व्यतिरिक्ततयात्मनि ॥
विद्वान् स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥ ४० ॥

देहादिकोंमें प्रकाश करनेसे आत्मा भिन्न है तथा जड़ वृत्तिवाले अन्तःकरणसेभी शुद्ध है, जैसे स्वप्नमें अपना आनिष्ट देखनेसे जागृत अवस्थामें उन अन्तःकरणकी वृत्तियोंका प्रकाशक आत्मा पृथक् है, इस प्रकार मनमें सम्यक् ज्ञानकर पांथ्यराजा सब पदार्थोंसे उपशमको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥

साक्षाद् भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप ॥
विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥ ४१ ॥

हे नृप ! साक्षात् गुरु भगवान् हरिके कहे भये विशुद्ध ज्ञानदीप करकै विश्वमुख ईश्वरकी स्फूर्ति होय आई ॥ ४१ ॥

परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथात्मनि ॥
वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥ ४२ ॥

परब्रह्ममें तो सब जीवनको मानते भये, परब्रह्मकों सब जीवनमें देखनेहारी दृष्टिसें देखकर या शरीरकों त्यागतो भयो ॥ ४२ ॥

पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ॥
प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान् सा पतिदेवता॥ ४३ ॥

परमधर्मज्ञ पति मलयध्वजकी प्रेमसें सेवा करती भई, वैदर्भी सब भोग त्याग पतिको देवताके समान मानती भई ॥ ४३ ॥

चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा ॥
बभावुपपतिं शान्ता शिखा शान्तमिवानलम्॥४४॥

चीर वस्त्र पहिरे व्रतसे कर्षित एकवेणी युक्त वार लिये धूमरहित अग्निकी ज्वाला अग्निके शान्त होनेपर स्वयमेव जैसे शान्त होजाती है ऐसे वह पतिके समीपमें पतिहीकी नाई शान्त होगई ॥ ४४ ॥

अजानती प्रियतमं यदोपरतमङ्गना ॥
सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरत् ॥ ४५ ॥

अपने प्रीतमको उपरामको प्राप्त हुआ न जानकर स्थिर ह्वैके आसनपर बैठ पहिलेकी समान सेवन करती भई ॥ ४५ ॥

यदा नोपालभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती ॥
आसीत् संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥ ४६ ॥

पतिकी सेवा करनेमें जब चरणोंमें गरमपन न मालूम पडो तब संविग्नहृदय भई यूथभ्रष्ट मृगीकी समान शोक करती हुई ॥ ४६ ॥

आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्लवाऽश्रुभिः ॥
स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥ ४७ ॥

अनाथ और दीन अपने आत्माको शोच करती व्याकुलताके आंसुओंसे स्तनोंको भिजोती ऊंचे स्वरसे रोती हुई ॥ ४७ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलाम् ॥
दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥४८ ॥

हे राजर्षे ! उठो उठो समुद्रपर्यंतकी डरती भई पृथिवीको क्षत्री-नसे चोरनसे रक्षा करवे योग्य हो ॥ ४८ ॥

एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् ॥
पतिता पादयोर्भर्तू रुदन्त्यश्रूण्यवर्तयत् ॥ ४९ ॥

ऐसे विलाप करती भई बाला वनमें पतिके पाछे जाती भई, भर्ताके चरणोंमें पतित हो रोती आंसू डारती भई ॥ ४९ ॥

चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् ॥
आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥ ५० ॥

काष्ठकी चिता बनाय वामें पतिको देह धर जराय विलाप करती भई, और आपभी मरणमें मन धारती भई ॥ ५० ॥

तत्र पूर्वतरः कश्चित् सखा ब्राह्मण आत्मवान् ॥
सान्त्वयन् वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो॥५१॥

हे प्रभो! तहां प्राचीन कोई वेदान्ती ब्राह्मण वाके सखा (ईश्वर) आयकर मनोहरवाणीसे सांत्वनाकर रोती भईसे बोले ॥ ५१ ॥

---

१ पहले पुरंजनको अहंकार था इस कारण भगवानने दर्शन नहीं दिया अब अभिमानशून्य हो धर्मयुक्त बैठनेपर भगवानने दर्शन देकर उपदेश किया ।

॥ ब्राह्मण उवाच ॥

का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि॥
जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥ ५२ ॥

ब्राह्मण बोले कि तुम कौन हो कौनकी हो ये कौन सोयो है, जाको तुम सोच करो हो, मैं तुह्मारो सखा हूं मोकों जानोहो कि नहीं जो पहले तुम हमारे संग विचरतेथे ॥ ५२ ॥

अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे ॥
हित्वा मां पदमन्विच्छन् भौमभोगरतो गतः ॥५३॥

हे सखे! मैं अविज्ञातनामक तुह्मारो सखा हूं सो मेरी और अपने शरीरकी तुम्हें कुछ स्मृति है तुम मोको त्यागकर स्थानकी इच्छा-कर भूमिके भोगमें रत होगये ॥ ५३ ॥

हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ ॥
अभूतामन्तरावौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ ५४ ॥

हे आर्य! हम तुम दोनों शुद्ध सखा मानसवासी हंस हैं, सो हजार वर्षोंको अंतर पडगयो, स्थानके विना तुम जीव हो मैं ईश्वर हूं॥५४॥

स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् ॥
विचरन् पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥ ५५ ॥

हे बन्धो! गांवके विषयमें तुह्मारो मति ही सो मोको त्याग करके तुम गए, और किसी स्त्रीकी रचीभई पुरीमें विचरते रहे, ऐसे पृथ्वी पर मैंने तुम्हें देखा ॥ ५५ ॥

पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ॥
षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ॥ ५६ ॥

इस पुरीमें पांच (शब्दादि विषय) बाग थे नौ (छिद्ररूप) द्वार थे

एक पुरीका पालक (प्राण) था तीन (पृथ्वी जल तेज) किले थे छः (पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन) व्यौपारी थे पांच (कर्मेंद्रिय) दुकानें थीं पांचही (पंचभूतोंकी प्रकृति) मूल कारण थे स्त्री (बुद्धि) स्वामी थीं ऐसी वह पुरी थी ॥ ५६ ॥

पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ॥
तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिन्द्रियसंग्रहः ॥ ५७ ॥

हे प्रभो ! पांच इन्द्रियोंके अर्थ जामें आरामस्थान नव प्राणरूप जामें दर्वाजे हैं, तेज जल अन्न ये कोठे हैं, इन्द्रियोंके संग्रह वामें कुल हैं ॥

विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया ॥
शक्त्यधीशः पुमांस्तत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ॥ ५८ ॥

क्रियाशक्तिरूप व्यवहार होता है, वा पुरीमें जाको नाश नहीं वो भूत प्रकृति है यामें जो पुरुष है वो शक्तिको अधीश है वो या पुरमें प्रविष्ट है पर जाने नहीं जाते हैं ॥ ५८ ॥

तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ॥
तत्सङ्गादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥ ५९ ॥

हे प्रभो ! उस पुरीमें तुम उस स्त्रीसे रमण करते रहे अब सुनकेरभी तुम्हें उसकी स्मृति नहीं आती वाईके संगसे ऐसी पापीयसी दशाको आप प्राप्त होते भये ॥ ५९ ॥

न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत् तव ॥
न पतिस्त्वं पुरंजन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥ ६० ॥

न तुम विदर्भकी बेटी हो न ये वीर तुम्हारो सुहृद है, न पुरंजनीके तुम पति हो, या नवमुखके पुरमें तुम रुक रहेहो ॥ ६० ॥

माया ह्येषा मया सृष्टा यत् पुमांसं स्त्रियं सतीम् ॥
मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥ ६१ ॥

ये माया मैंने रची है, कभी पुरुष कभी स्त्री करतीहै सिद्धांतसे दोनों बात नहीं हैं, हम तुम दोनों शुद्ध हंस हैं जो अब हम आगे कहैं हैं सो सुनो हमारी गति देखो ॥ ६१ ॥

अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाऽहं विचक्ष्व भोः ॥
न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥ ६२ ॥

हे जीव ! हम तुम दोनों येक हैं, अन्य नहीं जो पंडित हैं वे कभी हमारे तुम्हारेमैं भेद नहीं देखै है ॥ ६२ ॥

यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ॥
द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥ ६३ ॥

जो ऐसे है भेद तौ कैसे माने है ताको उत्तर है कि जैसे पुरुष अपने एक आत्माको दर्पणमें चक्षुसे दो रूप देखै है, तैसेई हमारो तुह्मारो विद्याऽविद्या उपाधिकृत भेद है, परन्तु वास्तवसे भेद नहीं है॥६३॥

एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ॥
स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥६४॥

ऐसे वो मानस हंस जीवको मानसहंसवासी ईश्वरने ज्ञान करायो, तब स्वस्थ भयो, और ईश्वरकरके वियोगकी बुद्धिरूपस्मृति नष्ट हुई फेर प्राप्त होती भयी ॥ ६४ ॥

बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ॥
यत् परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः ॥६५॥

इति श्रीपुरञ्जनाख्याने स्त्रीविचिन्तया स्त्रीत्वं
प्राप्तस्य पुरंजनस्य दैवेन कदाचिन्मुक्ति-
वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हे बर्हिष्मन् ! ये अध्यात्मज्ञान परोक्ष करकै हमने तुमें दिखायो

जो परोक्षविधिसे वर्णन करनेके यह कारण है कि जगत्पालक नारायण परोक्षरीतसे वहुत प्रसन्न होते हैं[1] ॥ ६५ ॥

इति श्री पुरंजनाख्याने स्त्रीविचिन्तया स्त्रीत्वं प्राप्तस्य पुरंजनस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ

पञ्चमोऽध्यायः ।

॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥

भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ॥
कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥ १ ॥

प्राचीनबर्हि नृप बोले कि हे भगवन्! तुम्हारो वचन हमको सुन्दरतासे समझमें न आयो, हम सब कर्मकांडोंसे मोहित हैं, जो वेदांती अध्यात्म ज्ञानी कवि हैं, वे इसे जाने है यासे समझायकै फिरसे कहो ॥ १ ॥

॥ नारद उवाच ॥

पुरुषं पुरंजनं विद्याद् यद्व्यनक्त्यात्मनः परम् ॥
एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥ २ ॥

---

१ याको ये पद है ॥ कालंगडा तिताल ॥ भूलोमनठगियनके संग अटको ॥ टेर ॥ बहुतठगोरे भएइठोरे काहेकूं इनसंग भटको ॥ १ ॥ जीभचटोरीबहुतठगोरीखानपानव हुगटको ॥ नयन निपूतेनेनारदिखाईरूपदेखकरमटको ॥ २ ॥ कौनवातनके छांनकरत हैवेदवचनसवपटको ॥ नाकठगैयानताकलगाई अतरचाहततहैंटटको ॥ ३ ॥ कौडीमिलनकी आसाताकतजायकरतनितलटको ॥ चोरनकेसंगचोरभयो तूकालफांसमैंपटको ॥ ४ ॥ बहुतजन्मभएकरतठगाईवेदगुरुजीनेहटको ॥ सतसंगतऔरधर्मकाममें कवहुजायनाहिफटको ॥ ५ ॥ पुरुषोत्तमकहैंसर्वेश्वरभजपापपुण्यसवपटको ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी बोले कि "पुरं जनयतीति पुरंजनो जीवः" या देहमें पुरंजन पुरुष जीवकूं जानो, जो अपने आत्माके पुरनको प्रगट करै है, जो जीव येक दो तीन चार पांवको होवै है, कभी बहुतपगको होय है, कभी विना पगको होय है ॥ २ ॥

योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ॥
यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥ ३ ॥

जो अविज्ञातनामक पुरुष जीवका सखा कहा है, वो ईश्वर है, जो ईश्वर नाम क्रियागुणोंसें पुरुषों करकै न जाने जायहैं ॥ ३ ॥

यदा जिघृक्षुः पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान् ॥
नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥ ४ ॥

जब संपूर्णता करकैं पुरुष प्रकृतिके गुणनकी ग्रहण करवेकी इच्छा करै है, तब नव द्वारयुक्त दो हाथ पगवारे देहको बहुत सुन्दर मान बसे है ॥ ४ ॥

बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ॥
यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन् पुमान् भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ५

या देहमें बुद्धिरूप स्त्री बसे है, वासे मम हम ये जीव करवे लगे हैं, याके आश्रित होयकै या देहमें पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा गुणनकूं भोगे है ५

सखाय इन्द्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् ॥
सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिर्यथोरगः ॥ ६ ॥

ज्ञान कर्म करवेवारे इन्द्रियोंके गण याके सखा है, और इन्द्रियोंकी वृत्तियें सखियें हैं, पंचवृत्तिरूप पंचशिरको प्राणरूप यामें सर्प है ॥ ६ ॥

बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् ॥
पञ्चालाः पञ्च विषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ॥ ७ ॥

जो बलवान सैनापति कहा गया है वह मन है कारण कि यह मन ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रियका स्वामी है पंचेंद्रियका विषय सो पंचाल देश है, जामें नवद्वारको पुर शरीर है ॥ ७ ॥

अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति ॥
द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ॥ ८ ॥

नेत्र नाक मुख कान शिश्न गुदा ये दो दो द्वार बाहिरको निकसे भए है, सो इन इन मार्गोंसे जीव इन्द्रियोंको साथ ले बाहर जाता है ८

अक्षिणी नासिके आस्यमिति पञ्च पुरः कृताः ॥
दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥ ९ ॥

अक्षिणी २ नाक २ मुख १ ये पांच पूर्वकी ओरके द्वार हैं दक्षिणकी ओरको दक्षिण कर्ण है उत्तरको उत्तर कर्ण है ॥ ९ ॥

पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ॥
खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ॥ १० ॥

पश्चिम ओर नीचेके दो द्वार गुदा शिश्न देहमें है, खद्योत आविर्मुखीद्वार बराबर निर्माण नेत्र है ॥ १० ॥

रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥
नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते ॥ ११ ॥

जिनसे यह जीव चक्षु इन्द्रियकी सहायतासे इन द्वारोंसे विभ्राजित नाम देशमें जाता अर्थात् रूप देखता है नलिनी नालिनी नाक है, जामें सुगंध ज्ञानगंध कहा है ॥ ११ ॥

घ्राणोऽवधूतो मुख्याऽऽस्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥
आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमन्धो बहूदनम् ॥ १२ ॥

सौरभ देश गंध है अवधूत मित्र घ्राण इन्द्रिय है मुख्य द्वार मुख है विपण अर्थात् वाणी रसज्ञ अर्थात् रसना इन्द्रिय ये दोनों सखा हैं १२

पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥
प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम् ॥ १३ ॥

पितरनके बुलावनेवारो दहिना कान है, देवनको बुलायवेवारो बांयो कान है, प्रवृत्तिमार्गको शास्त्र निवृत्तिमार्गको शास्त्र पंचाल देश है १३

पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत् ॥
आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ॥ १४ ॥

पितृयान देवयानन सुनवेसे श्रोत्रसे प्राप्त होय है, आसुरी मेढ्र इंद्रिय नीचेके द्वारसें मैथुन होय है, जिसमें गाववारोंकी रति होय है ॥ १४ ॥

उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥
वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु ॥ १५ ॥

दुर्मद उपस्थ है निर्ऋति गुदा है लुब्धक पायु इन्द्रिय है वैशसदेश नरक है, अब अंधद्वार वर्णन करते हैं सो तुम सुनो ॥ १५ ॥

हस्तौ पादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥
अन्तःपुरं च हृदयं विषूचिर्मन उच्यते ॥ १६ ॥

हाथ पांवसे युक्त पुरुष चलता और कर्म करताहै, अंतःपुर हृदय है, पदार्थोंको अनुवाद करवेवारो मन है ॥ १६ ॥

तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥
यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ॥ १७ ॥

जिसके सत्व रज तम गुणसे हृदयमें प्रमाद हर्ष और मोह होते हैं गुणोंसे आवृत होकर दर्शन स्पर्शनादि जो कार्य बुद्धि संपादन करती है ॥ १७ ॥

तथा तथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥
देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयो गतिः ॥ १८ ॥

उन सब कर्मोंको अपना किया मानकर स्वप्नमें उसीके अनुसार अधिकारको प्राप्त हो स्वयं साक्षी होकरभी जीवात्मा जाग्रतमें उसीके अनुसार परिवर्तित होता है. देह रथ है इंद्रियरूप घोडा इसमैं लगे है, संवत्सरका वेग इसकी गति है ॥ १८ ॥

द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पञ्चासुबन्धुरः ॥
मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्वकूबरः ॥ १९ ॥

पुण्यपापरूप दो पैया है, सत्वादि तीनों गुणोंकी ध्वजा है, पंचप्राणरूप वंधनकी डोर है, मनरूप रस्सी है, बुद्धिरूप हांकनवारो है, हृदयरूप रथके मध्यको स्थान है, सुखदुःखरूप दोनों ओरके जूआ है १९

पञ्चेन्द्रियार्थ प्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥
आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ॥ २० ॥

पांचइंद्रियोंके अर्थरूप धुराके वांस है, सप्तधातु रथके ऊपरके बैठक है, आकूति प्राणोंकी शक्ति रथको पराक्रम है, मृगतृष्णामें ये दौडे है ॥ २० ॥

एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूना विनोदकृत् ॥
संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥ २१ ॥

एकादश इंद्रियरूप सेना है, पंचसुनाही या रथको आनंद करवेवारो है, चंडवेग कालरूप संवत्सर है, जासे काल उपलक्षित होय है २१

तस्याहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रयः स्मृताः ॥
हरन्त्यायुः परिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ २२ ॥

दिनरूप गंधर्व हैं, रात्री गंधर्विनी कही हैं, जो दिनरात व्यतीत होयकर तीनसे साठ दिनकों व्यतीत करै हैं ॥ २२ ॥

कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति ॥
स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥ २३ ॥

कालकी कन्या साक्षात् जरा है जाकी कोईभी इच्छा नहीं करते यवनोंका राजा मृत्यु है उसनें लोकनाशके निमित्त जराको अपनी भगिनी बनाय ॥ २३ ॥

आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः ॥
भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो विविधज्वरः ॥ २४ ॥

आधी व्याधी तिस यवनके सेनाके लोग हैं, सब जीवनके पीडामें शीघ्र वेगवारो प्रज्वारनामक विविधप्रकारको ज्वर है ॥ २४ ॥

एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः ॥
क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥ २५ ॥

ऐसे बहुत प्रकारके अध्यात्मादि त्रितापसे क्लिश्यमान देहमें देही तमोगुणमें होयकर वर्तता भयो ॥ २५ ॥

प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ॥
शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥२६॥

प्राण इंद्रिय मनके धर्म आत्मामें निश्चयकरकै यह निर्गुणजीव कामके लवमात्र सुखकूं ध्यान करता सोयजाय है मम अहम् कर्म करे है॥

यदात्मानमविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुम् ॥
पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥ २७ ॥

जासमय भगवान परमगुरुकी आत्मा न जानकै पुरुष स्वप्रकाशक प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त होय है, ॥ २७ ॥

गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः ॥
शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथा कर्माभिजायते ॥ २८ ॥

तब गुणोंको अभिमानीसे जीव अवश होयकर सात्विक राजस तामस कर्म करे है जैसो कर्म करे तैसो जन्मैहै ॥ २८ ॥

शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् ॥
दुःखोदर्कान्क्रियायासांस्तमःशोकोत्कटान्क्वचित्॥
सात्विक कर्म करनेसे महाप्रकाश युक्त लोकनमें जायहै, राजस कर्म करनेसे महादुःखदायक लोकनमें जायहै, क्रियाकरकै उन राजसकर्ममें बडो परिश्रम होयहै तामसकर्म करनेसे महाशोकभरे लोकोंमें जायहै ॥ २९ ॥

क्वचित्पुमान्क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः ॥
देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ॥ ३० ॥
कभी तो पुरुष कभी स्त्री कभी नपुंसक ऐसी अंधी बुद्धि हो जाय है, देव मनुष्य पक्षी पशु होय है, जैसा कर्म गुण होय वैसो जन्म होय है ३०

क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ॥
चरन्विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥ ३१ ॥
भूंखे दीन और घर २ डोलते कुत्तेकी समान भाग्यसें कहीं मार खाय आवे है कहीं लड्डु खाय आवे है ॥ ३१ ॥

तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् ॥
उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम्॥३२॥
तैसे कामासक्तहृदयवारो जीव ऊंचे नीचे मार्गमें घूमते ऊपर नीचे मध्यमें जाते हैं, भाग्यसें प्रिय अप्रियको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥

दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु ॥
जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥३३॥
दुःख दूर करनेका सत्य उपाय तो दुर्लभ है जो करै तौभी प्रारब्धसे जीवोंसे शरीरसे होते हुए क्लेशोंमें किसी संकट यह यथार्थ रीतिसे नहीं छुट सक्ता ॥ ३३ ॥

यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् ॥
तं स्कन्धेन स आधत्ते यथा सर्वाः प्रतिक्रियाः॥३४॥

जैसे बहुत बोझके भारको पुरुष शिरपर लेचले है कभी कंधापै धरै है, भार सब शरीरहीपर है, तैसेही सब याकी प्रतिक्रिया जीवपर है३४

नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् ॥
द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥ ३५ ॥

हे अनघ! एकांत कर्मसे कर्मको केवल प्रतीकार न होय सके है या दोनों अविद्यासे हैं, जैसे स्वप्नमें स्वप्न जागेसे मालुम पडैहै॥३५॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥
मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥ ३६ ॥

संसार असत्य है तथापि मनमें जबतक विषयोंका ध्यान रहै तब तक नहीं मिट सक्ता जैसे स्वप्न असत्य है परन्तु उपाधिरूप मनकी स्वप्नावस्था न गयेतक वह नहीं मिटता ॥ ३६ ॥

अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा ॥
संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥३७॥

इसकारण अज्ञान कि जिसके हेतु परम पुरुषार्थरूप आत्माके अखंड प्रवाहवाला जगत हुआहै उस अज्ञानकी नष्टता गुरुरूप भगवानकी भक्तिसे होती है ॥ ३७ ॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः॥
सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥ ३८ ॥

वासुदेव भगवानमें करो भयो भक्तियोग सुन्दरता करके वैराग्य और ज्ञान दोनोंको उत्पन्न करै है ॥ ३८ ॥

सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ॥
शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥३९॥

हे राजर्षे ! सो थोरेसेमें अच्युतकी कथा सुनवेसे श्रद्धासे नित्य याके पढनेसे भगवान् प्रसन्न होय है ॥ ३९ ॥

यत्र भागवता राजन्साधवो विशदाशयाः ॥
भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥ ४० ॥

हे राजन्! भागवत साधु निर्मल अंतःकरणवारे भगवतके गुण कथाश्रवणमें जिनके चित्त सदा लगे हैं वे जहां हों ॥ ४० ॥

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र-
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ॥
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णै-
स्तान्नस्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥ ४१ ॥

तहां मधुनामा दैत्यके मारवेवारे श्रीकृष्णके चरित्रामृतकी नदियें सब ओरसे वहैं हैं, सो हे नृप! जो गंभीर कर्णोंसे अत्यन्त पान करते है तिनको क्षुधा पिपासा भय शोक मोह नहीं स्पर्श करें हैं ४१

एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ॥
न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥ ४२ ॥

कारण कि सत्संग विना स्वयं विचारसे ऊपर कहे उपद्रवोंसे आलसके कारण रसकी प्राप्ति कठिन है विना इसके भगवतकथारूप अमृत सागरमें प्रीति होनी कठिन है ॥ ४२ ॥

प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान्गिरिशो मनुः ॥
दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥ ४३ ॥

प्रजाके पतिनकें पति साक्षात् भगवान् शिव मनु दक्षादिक प्रजाके अध्यक्ष नैष्ठिक सनकादिक ॥ ४३ ॥

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥
भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥ ४४ ॥

मरीचि अत्रि अंगिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु भृगु वसिष्ठ ये मोपर्यंत ब्रह्मवादि भगवत्कथामें प्रीति करते हैं ॥ ४४ ॥

अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः ॥
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम् ॥४५॥

परन्तु अबतकभी वाणियोंके वक्ता तप विद्या समाधि करकै सबके देखवेवारे परमेश्वरकों देखतेहुएभी न देखै हैं ॥ ४५ ॥

शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे ॥
मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ॥४६॥

अनन्त महाविस्तृत शब्दब्रह्ममें मंत्ररूप चिन्हकरकै विचरते हुए सबमें वासी परमेश्वरको भजन करते हुएभी नहीं जानते ॥ ४६ ॥

यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ॥
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥ ४७॥

जा समय भगवान् आत्मासे भावित हो जापर अनुग्रह करै है, तब वह मनुष्यलोक और वेदमें सदा लगनेहारी बुद्धिको त्याग करै है॥४७॥

तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ॥
माऽर्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥ ४८॥

हे बर्हिष्मन् ! तातें अज्ञानसे सत्यकी नाई विहित होते कर्ममें परमार्थ दृष्टि मत करो वे कर्म श्रोत्रइंद्रियस्पर्शि हैं सिद्धान्त वस्तुके स्पर्श करवेवारे नहीं है ॥ ४८ ॥

स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः ॥
आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥ ४९ ॥

वेदकेअभिप्रायको न जानकर जो कहतेहैं कि वेदका तात्पर्य केवल कर्मपर है वे यज्ञके धूमसे अपनी बुद्धि मलीन होनेके कारण

आत्मतत्त्वके तात्पर्यवाले ईश्वरहीका कथन करनेहारे वेदके यथार्थ अभिप्रायको नहीं जान्ते ॥ ४९ ॥

आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमण्डलम् ॥
स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥ ५० ॥

पूर्वको अग्रभागवाले कुश बिछायकर सब भूमंडलपर यज्ञ कर तैंने महागर्व कीनो पशुवधसे मानी हो परमकर्मकूं न जाना ॥ ५० ॥

तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥
तद्वर्णं तत्कुलं श्रेष्ठ तदाश्रमं शुभं भवेत् ॥ ५१ ॥

वोही कर्म है जासे हरि प्रसन्न होय, सोई विद्या है जो ईश्वरमें बुद्धि लगै, वो वर्ण वो कुल वो आश्रम शुभ होय है ॥ ५१ ॥

हरिर्देहभृतामात्मा स्वयंप्रकृतिरीश्वरः ॥
तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥ ५२ ॥

श्रीहरि सब देहधारीनके आत्मा हैं, आप प्रकृतीके ईश्वर हैं, तिनके चरणकमलकी शरणागति छे प्रकारकी करनेसे या संसारमें मनुष्यनको क्षेम होय है ॥ ५२ ॥

स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ॥
इति वेद स वै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः ॥ ५३ ॥

उनके प्रसन्न करनेमें कुछ कठिनता नहीं है कारण कि वे सबके प्रियतम आत्मा हैं उनके भजनमें किंचित्‌भी भय नहीं है जो ऐसा जान्ते हैं वही पंडित है पंडितही गुरु और भगवान है ॥ ५३ ॥

॥ नारद उवाच ॥

प्रश्न एव हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ ॥
अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥ ५४ ॥

श्रीनारदजी बोले कि हे पुरुषश्रेष्ठ! तुह्मारो प्रश्न निश्चय भयो अब मैं इसमें गुह्य गोपनीय निश्चय सो कहूं हूं तुम सुनो ॥ ५४ ॥

क्षुद्रं चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा ।
रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ॥
अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं ।
पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥ ५५ ॥

" जीवको एक और प्रकारसे वर्णन करे हैं क्षुद्र पदार्थोंको चरनेहारा एक मृग फूलवाडीमें स्त्रीके संग क्रीडा करता है भौरोंके शब्दोंसे उसके कर्ण लुब्ध हैं मुखके सन्मुख भक्षण करनेहारे वृक खडे हैं तथापि यह मृग कुछ चिन्ता न कर आगे बढता चला जाता है पीठ व्याधेके बाणसें विद्ध है हे राजन्! तुम इसका मर्म विचारो ॥ ५५ ॥

॥ दण्डकम् ॥

सुमनःसधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्वयौपस्थ्यादि विचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडङ्घ्रिगण सामगीतवदतिमनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान्काललवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽतः शरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन्भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसि ॥५६॥

जो श्लोक पीछे कह्यो है वाकोही या दृण्डकमें व्यासजीने व्याख्यान करो है ॥ पुष्पोंके समान धर्मवाली स्त्रीनके शरणरूप बागमें पुष्पोंकी मधुगन्धकी नाईं अत्यन्त तुच्छ,काम्यकर्मके फलसें उत्पन्न, कामसुख लवमात्र जीभके स्वाद, शिश्नके विषयभोग आदिकों ढूंढते स्त्रीके उन विषयनमें मन लगायकर, भ्रमर गणके सुन्दर गीतकी नांईं अति मनोहर वनिता आदि जनोंके सम्भाषण करनेमें अत्यन्त लोभित मन कर्णवाले ये जीव आगे भेंडियानके यूथवत् अपनी आयूके हरवेवारे दिनरात कालके लवको न गिनकर घरमें विहार कर रहाहै और गुप्तरूपसे तेरे पीछे लगा हुआ काल भीतरही गुप्त बाणसें तेरा हृदय विदीर्ण करता है सो तुम्हें अब अपनी आत्माका विचार करना उचित है ॥ ५६ ॥

स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्त-।
श्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ॥
जह्यङ्गनाश्रममसत्तम यूथगाथं ।
प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥ ५७ ॥

सो तुम वा मृगकीसी चेष्टा अपने आत्माकी विचारो, और हृदयमें चित्तको आकर्षण कर चित्तमें बहिर्वृत्तिकूं रोध करो परं च असत्तमोंके यूथकी गाथावारे या संसारको त्याग कर जीवनके रक्षक ईश्वरको प्रसन्न करो, क्रमकरके सबसे विरामको प्राप्तहो ॥ ५७ ॥

॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥

श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत ॥
नैतज्जानन्त्युपाध्याया: किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥ ५८ ॥

प्राचीनबर्हि बोले कि हे ब्रह्मन्। हे नारदजी। जो आपने कह्यो सो हमनें सुनो विचारो परन्तु या ज्ञानको ये उपाध्याय जो मोको कर्मका

उपदेश करे है वे कहा नहीं जाने है जो जानते है तो मोसे कह्यो क्यौ नहीं ॥ ५८ ॥

संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् ॥
ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥५९॥

इस विषयमें उपाध्यायौंने वडा संदेहमें डालदिया था परंतु वह आपने सव दूर किया परन्तु यह एक और संदेह है कि जिससें ऋषिभी मोहको प्राप्त होतेहैं और इन्द्रियौंकी वृत्तिभी नहीं जासक्ती ॥ ५९ ॥

कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय यम् ॥
अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥ ६० ॥

जा देह करके पुरुष या जगमें कर्मौंका प्रारंभ करें है, वा देहकों यहां छोडकर परलोकमें और देह सेवित कर्मनको ये जीव प्राप्त होय है ६०

इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ॥
कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥ ६१ ॥

ये वेदवेत्तानका वाद जहां तहां सुनवेमें आवें है तथा आपनेभी कहा कि पुरंजननें कर्मकर दूसरे शरीरसे भोगे मेरा प्रश्न यह है जो करे उसे कर्मका फल मिलना उचित है एक देहके किये कर्मका फल दूसरा देह कैसे भोगताहै जो करे उसे भोगना उचित है, दूसरा प्रश्न यह है कि मनुष्य जो कर्म करताहै वह थोडे समयमें अदृश्य हो जाताहै जो कर्म अदृश्य हो गया उसका फल पीछे मिलना कैसे संभव है ६१

॥ नारद उवाच ॥

येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् ॥
भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ॥ ६२ ॥

श्रीनारदजी बोले कि जिस कर्तृत्व भोक्तृत्व स्थूल देहको नहीं है परन्तु मनकर कर्मौंका आरंभ करताहै अन्तःकरण स्थूल देहके संग

नाशको प्राप्त नहीं होय है, इस कारण जिस मनने वह कर्म कियाथा वही उसे भोगताहै ॥ ६२ ॥

शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा ॥
कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥ ६३ ॥

जैसे सोते समय श्वास लेते हुए इस पुरुषका जाग्रत अवस्थाका अहंकार दूर हो जाताहै और उसमेंभी स्वप्न अवस्थामें वही अनेक सुख दुःख भोगताहै परन्तु जो मन जागृत अवस्थामें था वही स्वप्नमें है जब जीवित अवस्थामेंभी अनेक देह प्राप्त होते हैं परन्तु भोक्ता मन एकही है इसी प्रकार दूसरे जन्ममेंभी यही भोगता जो यहाँ करताहै ॥ ६३ ॥

ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् ॥
गृह्णीयात्तत्पुमाञ्राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥ ६४ ॥

ये पुत्रादिक मेरे हैं ये हम हैं ऐसे कहताहुआ पुरुष महा अभिमान करताहै तो इस्से यह जानिये कि मन अंतःकरणके अभिमानका स्थान स्थूल शरीर है परन्तु इस्से यह कर्ता नहीं हो सक्ता अन्तःक-रणही कर्ता होकर दूसरी देहमेंभी जाकर वही भोगताहै ॥ ६४ ॥

यथानुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः ॥
एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥ ६५ ॥

सम्पूर्ण इंद्रियोंको अपने विषयोंके संग एक कालमें सम्बंध होने-परभी उन विषयोंका ज्ञान एकसाथ नहीं होता इस्से इन्द्रियोंपर अधिकार करनेहारा कोई दूसरा प्रतीत होता है वही चित्त है उसका जब जिस इन्द्रियसे संयोग होता है वह उसीको ग्रहण करता है इसी प्रकार चित्तकी वृत्तिभी एक समय उत्पन्न न होकर क्रमानुसार हो-तीहै इसीसे विदित होता है कि चित्तवृत्तिका उत्पादक पूर्व देहका

कर्म है जिससमय जो कर्म भोगनेको होताहै चित्तकी वृत्ति उसी प्रकारकी उत्पन्न होती है इससै पूर्वदेहके कर्म मानना युक्ति युक्त है ॥६५॥

नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् ॥
कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥ ६६ ॥

इस देहमें किसी समय ऐसी वस्तु स्वप्नमें दीखतीहै जो न कभी देखी न सुनी न अनुभव की हो तौ उससै यही माना जाता है कि अवश्य यह अनुभव पूर्वदेहमें हुआ होगा ॥ ६६ ॥

तेनास्य तादृशं राजँल्लिङ्गिनो देहसंभवम् ॥
श्रद्धत्स्वाननुभूतोर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥६७॥

कारण कि विना अनुभवकी वस्तु चित्तमें कदाचित नहीं आती इससै पूर्व देहका और इस देहका लिंग मन एकही है और पूर्वजन्मके संस्कार मनमें लगे हैं यह निश्चय और अनुभव है हे राजन्! इस वाक्यमें आप श्रद्धा कीजिये और मनसे स्पष्ट कीजिये ॥ ६७ ॥

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ॥
भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥६८॥

इसीसे भूत भविष्य योनियोंका जन्म इस वर्तमानकालके प्राणिका जाना जाता है उसके चित्तकी वृत्ति देखकर शुभ अशुभ देखकर नीच योनिका जन्म प्रतीत होताहै आगेका जन्मभी उसके कृत्य देखकर युक्तिसे जान लिया जाताहै ॥ ६८ ॥

अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते ॥
यथा तथाऽनुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥६९॥

किन्हीका प्रश्न है कि यदि पूर्वजन्मकी अनुभव वार्ताही दीखती है तौ कटाशिर तथा दिनमें नक्षत्र इत्यादि असम्भव वस्तु क्यों देखती है इसका उत्तर यह है कि शिरका कटना प्रतिबिम्बमेंभी

दीखता है और तारोंका प्रतिबिम्ब जलमें दीखता है यही वार्ता देशकाल और क्रिया (युद्ध आदि) का निद्राके दोषसे अन्तर दिखाती है इससे शंकाकी अवश्यकता नहीं पूर्वजन्म न माननेवालेकोभी तो स्वप्न निद्राका दोष मान्ना पडैगा ॥ ६९ ॥

सर्वे क्रमानुरोधेन मनसीन्द्रियगोचराः ॥
आयान्ति वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ॥७०॥

सम्पूर्णविषय जिनका पुरुष अनुभव करता ध्यान करता है क्रमसे मनमें आते जाते हैं हां मनरहित पुरुषको कुछ भान नहीं हो सक्ता इसकारण विना अनुभवका कुछभी पदार्थ नहीं है किसी सब पदार्थ एक साथही मनमें उदय होते हैं इससे सब लोकोंके सब पदार्थ कभी न कभी देखनेसे अनुभव किये स्वप्नमें आते हैं ॥ ७० ॥

सत्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ॥
तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥ ७१ ॥

केवल सतोगुणी निष्ठावाला मन भगवानके ध्यानमें होता है उस समय यह सम्पूर्ण विश्व मनमें लगा प्रतीत होताहै जैसे राहु दीखता नहीं परन्तु चन्द्र संयोगसे दीखता है ऐसेही मन शुद्ध होनेपर सिद्ध योगियोंको एक कालमें सब जगत दीखता है ॥ ७१ ॥

नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते ॥
यावद् बुद्धिमनोऽक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥७२॥

बुद्धि मन इंद्रिय और विषयोंके समूह यह अनादि सम्बन्ध जबतक लिंगशरीर है तबतक इस जीवके स्थूल देहका सम्बन्ध नहीं मिटता इससे स्थूलके न होनेसे लिंगदेहमें कर्तृत्व और भोक्तापन रहनेसे उसकी मुक्ति नहीं हो सक्ति क्योंकि लिंगदेहका बुद्धि मनसे सम्बन्ध है ॥ ७२ ॥

सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः ॥
नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥ ७३ ॥

सुषुप्ति मूर्छा अत्यंत दुःख मृत्यु ज्वरादिमें इंद्रियोंके व्यग्र होनेसे स्थूल देहका अहंकार जाता रहता है पर सूक्ष्मतासे रहता है उस समय उसका लिंगदेहसे विच्छेद नहीं होता ॥ ७३ ॥

गर्भे बाल्येप्यऽपौष्कल्यादेकादशविधं तदा ॥
लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥ ७४ ॥

गर्भमें बालकपनमें ऐसा स्थूलदेहका अभिमान प्रतीत नहीं होता जैसा तरुणाईमें एकादश इन्द्रियोंसे प्रतीत होताहै जैसे अमावास्यामें चन्द्रमाका चिन्ह होनेपरभी नहीं दीखता ऐसेही बाल और गर्भ अवस्थामें स्थूलदेहका अभिमान विद्यमान होतेभी नहीं दीखता इससे यह सिद्ध है जबतक लिंगशरीर है तबतक स्थूलदेहका अभिमान नहीं मिटता ॥ ७४ ॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥७५॥

अर्थके विद्यमान होनेमें संसारकी निवृत्ति नहीं होती क्यों कि विषयोंके ध्यान करनेसे स्वप्नमें जैसे अनर्थका आगमन हो जाताहै विना जागे वह नहीं छूटता ऐसे विषयोंके ध्यान छोडे विना संसार नहीं जाता ॥ ७५ ॥

एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत्षोडश विस्तृतम् ॥
एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥ ७६ ॥

ऐसे पंचभूतात्मक त्रिगुणमय एकादश इंद्रिय पंचतन्मात्राकें विकारात्मक यह लिंगदेह बुद्धिकरकै जब चेतनसे युक्त होयहै तब जीव कह्यो जायहै लिंगशरीरके त्यागपर अपने रूपको प्राप्त होताहै॥७६॥

अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ॥
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥ ७७ ॥

या जीव करके पुरुष देहनकूं प्राप्त होयहै त्यागे है हर्ष शोक भय दुःख सुख लिंगदेहके निमित्तही प्राप्त होयहै ॥ ७७ ॥

यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च ॥
न त्यजेन्म्रियमाणोपि प्राग्देहाभिमतिं जनः ॥७८॥
यावदन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम् ॥
मन एष मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम् ॥ ७९ ॥

यदि कोई कहे कि स्थूल छोडकर जब दूसरे शरीरमें यह प्रवेश करै तब इसकी मुक्ति हो जाय सो नहीं जैसे जोक जबतक दूसरी घासको नहीं पकडती तबतक पहलीको नहीं छोडती इसी प्रकार मरण समयभी जबतक दूसरे देहको प्राप्ति न हो जाय तबतक यह पूर्वदेहके अभिमानको नहीं त्यागन करता इस कारण हे राजन्! यह मनही प्राणियोंको इस संसारका हेतु है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

यदाऽक्षैश्चरितान्ध्यायन्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् ॥
सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ॥८०॥

जिस समय इन्द्रियोंके आचरण किये कर्मोंके यह मनुष्य वारंवार ध्यान करता कर्म करता है उन्ही कर्मोंके संबंधमें मन संसारका कारण है यद्यपि आत्मा असंग है तथापि अज्ञानके कारण जड़ पदार्थोंके संगमें बंधनसा प्रतीत होता है ॥ ८० ॥

अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ॥
पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ८१

याते इन सबके दूर करदेके लिये सर्वात्मभाव करके श्रीहरिको भजन करो विश्व भगवद्रूप देखो जाते उत्पत्ति पालन नाश होय हैं८१

॥ मैत्रेय उवाच ॥

भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम्॥
प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥८२॥

मैत्रेयजी बोले कि भागवतोंमें मुख्य भगवान्नारदजी जीव ईश्वरकी गति दिखायकर यासें आज्ञा ले सिद्ध सत्यलोकको जाते भए ॥८२॥

प्राचीनबर्हीं राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे ॥
आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ॥८३ ॥

प्राचीनबर्हिं राजर्षि प्रजासर्गकी रक्षा करवेमें सब पुत्रनको लगाय कर तपके अर्थ गंगासागर पर कपिलाश्रममें जाते भये और सब संग त्याग करते भये ॥ ८३ ॥

तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् ॥
विमुक्तसङ्गोऽनुभजन्भक्त्या तत्साम्यतामगात् ८४

तहां जाय वह वीर एकाग्र मन कर गोविंदचरणांबुजको भजतो भयो भक्ति करकै भगवत्की समान भावको प्राप्त भयो ॥ ८४ ॥

एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणानघ ॥
यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥ ८५ ॥

हे अनघ ! ये अध्यात्म पारोक्ष्य देवर्षिने गायो है, जो याकों सुनै सुनावै वो देहसे विमुक्त होय है ॥ ८५ ॥

एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं।
देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् ॥

---

१ राजाको नारदजीने गूढ वचनसै इस कारण उपदेश किया कि दृष्टांत दार्ष्टांतसै राजा शीघ्र ज्ञानी होजायगा और सहजमें समझ जायगा इसी कारण राजाको शीघ्र ज्ञान हुआ ।

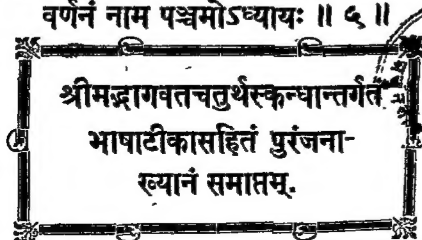
य: कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं ।
नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥ ८६ ॥

मुकुन्द यश युक्त भुवनको पवित्र करवेवारो देवर्षिवर्यके मुखसे निकरो भयो मनके शोधक इस ज्ञानको जो कीर्तन करै है, वो ब्रह्मलोकको जाय है, समस्तबन्धसे मुक्त होयकै या संसारमें कभीभी नहीं भ्रमैगा ॥ ८६ ॥

अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् ॥
एवं स्त्रियाऽऽश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः॥८७॥
इति श्रीपुरंजनाख्याने प्राचीनबर्हिनारदसंवादे-
ऽध्यात्मज्ञानवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

ये अद्भुत अध्यात्म परोक्ष ज्ञान मैंने तुमसे कह्यो, इससे देहाभिमान दूर हो जाता है तथा परलोकमें कर्म फल भोगनेके संदेहकी निवृत्ति होती है " जबतक याके संशय मोह दूर न होय है तक तब मोक्ष न होय है क्योंकि ऐसे लिखा है श्लोकोयम् ॥ मोहं ब्रह्म विना न याति सततं दुःखं च मित्रं विना मार्तंडेन विना न नश्यति तमः शत्रुश्च भेदं विना ॥ संतोषेण विना न लोभलहरी व्याधिश्च पथ्यं विना दारिद्र्यं च तथा न याति सततं श्रीकृष्णतुष्टिं विना ॥" ॥ ८७ ॥

इति श्रीपुरंजनाख्याने प्राचीनबर्हिनारद संवादे अध्यात्मज्ञानवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥


श्रीमद्भागवतचतुर्थस्कन्धान्तर्गतं
भाषाटीकासहितं पुरंजनाख्यानं समाप्तम्.

निवेदना.

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण गोविंदराजीय भूषण और तनिश्लोकी, रामानुजी इन तीनों व्याख्या सहित छपके तैयार है. ग्राहक लोगोंको इसका मूल्य २५ रु० पडेगा. और भगवद्गुणदर्पणाख्य श्रीविष्णुसहस्रनामभाष्य १२००० ग्रन्थ भेटमें दिया जायगा. इसका डाकमहसूल अलग पडेगा. डाकमहसूल प्रथम आनेसे पुस्तक व्हाल्युपेवलसे भेजा जायगा. इसका कमिशन नहीं मिलेगा।

सुन्दरकांड—उक्त **भूषण** आदि तीन टीकाओंसे सहित छपके तैयार है. यह अलगभी बेचा जाता है की० ३ रु०।

श्रीविष्णुसहस्रनाम.

१ भगवद्गुणदर्पणभाष्य निर्वचन और निरुक्ति इन तीन संस्कृत टीकासहित छपके तैयार है, यह पुस्तक बहुत बडा है, कीमत ५ रु०।

२ भगवद्गुणदर्पणभाष्यकी व्युत्पत्ति और उसके अनुसार **दीपिका** नामक भाषाटीका सहित, कीमत १ रु०।

३ शंकराचार्यकृतभाष्यकी व्युत्पत्ति और उसके अनुसार **चंद्रिका** नामक भाषाटीका सहित, कीमत १२ आना।

४ केवल **भाषाटीका** सहित गुटका की० ८ आ०।

गीता पंचरत्न (गुटका) भाषाटीकासहित. पांचों रत्नोंकी सरल सुबोध भाषाटीका छपके तैयार है. की० २ रु०।

जीवनचरित्र (नवीन) **गोस्वामी तुलसीदासजीका** (श्रीरानी कमलकुँवरि कृत पं० ज्वालाप्रसादजीसे परिशोधित)। इसमें गोस्वामीके एक सौ साठ चरित्र हैं। यद्यपि इनका जीवनचरित्र अनेक स्थानोंमें मुद्रित हुआ है, परंतु महा परिश्रमसे अनेक ग्रंथोंका अवलोकन कर तथा नाभाजीकृत भक्तमालसे यह जीवनचरित्र अनेक छंद चौपाई आदिमें परम प्रेमसे वर्णन किया है। यह बहुतही रसाल हुआ है। जिसके पाठ करनेसे मनुष्योंका चित्त आल्हादित होकर परमभक्तिसे श्रीरामचंद्रजीके ओर दौडता है। की० ८ आना।